मुद्रक
श्यामसुन्दर श्रीवास्तव
कायस्थ पाठशाला प्रेस
प्रयाग

जुलाई, १९३५
प्रथम संस्करण

प्रकाशक
साहित्य-सेवक-संघ
छपरा

लंका

लंका

[१]

अनुराधपुर, लंका की राजधानी

यस्याम्बुधिः स भगवान् स च रोहणाद्रिः,
कोशाविमौ मदन-मंत्र-पदैर्वचोभिः।
सोऽयं प्रियो यदि हसन् मृदु सिंहलेन्द्रः,
क्रीडानिधानमनुराधपुरं धिनोति॥

(राजशेखरः)

कविराज राजशेखरने (८८०-९२० ई०) अपने बाल-रामायणमें इन पंक्तियोंको उस समय लिखा था, जिस समय अनुराधपुरका अन्तिम समय बिलकुल समीप था; तो भी उसमें अभी इतनी शक्ति थी कि उसका राजा द्वितीय सेन (८६६-९०१ ई०) पाण्ड्य (मदुरा)-नरेशको गद्दीसे उतार, दूसरेको सिंहासनारूढ़ कर सकता था। प्रायः १००१ ई० में चोलराज

राज-राज ने (प्रथम) सिंहल-विजय किया और सिंहलेश्वर महेन्द्र चमको बन्दी बना भारत ले गया। वहीं उसकी मृत्यु हुई। इस पराजयके बाद फिर अनुराधपुरको लंकाकी राजधानी बननेका सौभाग्य न प्राप्त हुआ। तो भी अनुराधपुर ४३७ ई० पू० से १००१ ई० प्रायः डेढ़ हज़ार वर्षों तक, सिंहलकी राजधानी रहा। यही कारण है जो ९२६ वर्षोंसे राज्यश्री-शून्य होनेके बाद, आज भी उसके कोसों तक फैले हुए ध्वंसावशेष, उसकी पुरातन भव्यकीर्तिकी छटा सम्मुख उपस्थित कर आँखोंको चकाचौंध कर सकते हैं।

लंकाको पहचाननेके लिए अनुराधपुरका दर्शन अनिवार्य है। जिसने अनुराधपुरको नहीं देखा और न समझा उसके लिए सिंहलद्वीपका समझना असम्भव है। अनुराधपुरकी एक एक अंगुल भूमि सहस्राब्दियोंकी अनेक मधुर, पवित्र स्मृतियोंसे परिपूर्ण है। आज मैं पाठकोंके सम्मुख उसी अनुराधपुरके विषयमें लिखना चाहता हूँ। यद्यपि वर्तमान अनुराधपुरको आप बहुत कुछ समझ सकते हैं, तो भी महान् अनुराधपुरके जाननेके लिए उसके बाल्यकालकी कथाका कुछ दिग्दर्शन करा देना आवश्यक है, जिसमें हमारी अपनी भी भव्य पुरातन स्मृति एकीभूत है।

ई० पू० सप्तम शताब्दीका समय था जबकि वंगदेशकी राजकन्याको कोई वन्य दस्यु पकड़ ले गया। उसने लाटके

(गुजरात) जंगलोंमें उसे रक्खा, जहाँ राजकन्याको उससे दो सन्तान हुईं—सिंहबाहु और सीवली। आगे चलकर सिंहबाहु सिंहपुर नामसे एक नगर बसाकर लाटेश्वर बने। उन्हें सीवलीसे ३२ लड़के हुए, जिनमेंसे बड़ेका नाम विजयकुमार था। विजय ज्येष्ठ और पिताका प्रेमपात्र होनेसे राज्यका उत्तराधिकारी और युवराज हुआ, किन्तु उसकी प्रकृति बड़ी उद्दण्ड थी। वह अपने साथियोंको साथ लेकर लोगोंपर नाना प्रकारके अत्याचार करने लगा। प्रजाने राजाके पास फ़र्याद की। महाराजने राजकुमारको चेतावनी दी, किन्तु उसके स्वभावमें कुछ भी परिवर्तन न हुआ। अन्तमें प्रजाके दबावसे राजाने विजय और उसके सात सौ साथियों तथा उनकी स्त्रियोंको दो जहाज़ोंमें बैठाकर अपने राज्य से सदाके लिए उसी प्रकार निर्वासित कर दिया जैसे कि महाराज सगरने युवराज असमंजसको। रास्तेमें स्त्रियों-वाली नाव तो बह-कर किसी ऐसे स्थान पर पहुँची; जहाँसे फिर उन्हें उनसे मिलनेका सौभाग्य न हुआ; किन्तु विजय और उसके साथी सुप्पारक (सुप्पारा, बंबईके समीप) पहुँचे। नगर-वासियोंने बड़े सत्कारके साथ उनका स्वागत किया, किन्तु नीम न मीठो होय। वहाँ भी उन्होंने वही उपद्रव मचाना आरम्भ किया। लोगोंने उन्हें जानसे मार डालनेकी ठान ली, जिसपर वे वहाँसे भागकर भरुकच्छ (भड़ोंच) पहुँचे। वे वहाँ भी न ठहर सके और अन्तमें वहाँसे चलकर ईसा-पूर्व ५४३ के वैशाख-मासमें लंका-द्वीपके पश्चिमोत्तर समुद्र-तटपर पहुँचे। कोलम्बसकी तरह उन्हें भी

भ्रान्ति हुई और उन्होंने उस स्थानको बहुमूल्य मोतियोंका खान ताम्रपर्णी-नदीका तट समझा। इस प्रकार उस स्थान पर बसनेवाली बस्ती ताम्रपर्णीके नामसे प्रसिद्ध हुई, और कालान्तरमें उसने सारे द्वीपको अपने नामसे ताम्रपर्णीके नामसे प्रख्यात किया। महाराज अशोकने भी अपने शिला-लेखमें उसे इसी नामसे स्मरण किया। विजयने अपने सिंह-वंशकी दूसरी छाप दी, जिससे लंकाका नाम सिंह पड़ा और निवासी भी सिंहल कहलाए।

विजयने लंकाके मूल-निवासियोंको विजय कर एक आर्य-राज्य स्थापित किया। समयके ठोकरोंने उसे अब ऐसा बना दिया था कि वह अपनेको योग्य शासक सिद्ध करे। उसके साथियोंने भिन्न भिन्न जगहों पर अनेक बस्तियाँ बसाईं, जिनमें से अमात्य अनुराधने मलवत-नदीके तटपर अपने नामसे अनुराधपुरको बसाया। ३८ वर्ष राज्य करने पर महाराज विजय निस्सन्तान मरे। उनके बाद उनका भतीजा पाण्डु वासुदेव लंकामें आकर राजा हुआ, जिसने अपना विवाह भगवान् बुद्धके चचा अमितौदनके पुत्र तत्कालीन वंग-राज पाण्डुकी कन्या भद्र-कात्यायनीसे किया, जिसके साथ बहुतसे परिवार विहार और बङ्गालसे बसनेके लिए लंका चले आये। इस प्रकार लङ्कामें विजयके सातसौ साथियों और उनकी पाण्ड्य स्त्रियोंसे आर्योंकी जो संख्या थी वह अब इन नये लोगोंके आनेसे और भी बढ़ गई।

विजयके बाद लंकाके सिंहासनपर पाँचवे राजा मुटसीव ई० पू० ३०७ में बैठे, जिनके बाद उनके बड़े लड़के देवानाम्प्रिय

तिष्य २४७ में सिंहासनासीन हुए। उस समय भारतमें देवानाम्प्रिय प्रियदर्शी महाराज अशोकका धर्मराज्य था, जिन्होंने २६९ ई० पू० राज्य प्राप्त किया और २६५ ई० पू० अपना राज्याभिषेक कराया। इस प्रकार सम्राट अशोकके २३वे शासन-कालमें देवानाम्प्रिय तिष्य सिंहासनासीन हुए। जिस प्रकार विजयसे लंकाके इतिहासमें आर्योंके उपनिवेश-द्वारा एक नया युग आरम्भ होता है, उसी प्रकार देवानाम्प्रिय तिष्यसे भी बौद्ध-धर्मके प्रचार द्वारा दूसरा चिरस्थायी काण्ड आरम्भ होता है। महाराज अशोकने अपने चौदहवें अभिषेक-वर्षमें ताम्रपर्णीमें औषधि और चिकित्साका प्रबन्ध लिखा है। अतः देवानाम्प्रियके पिता मुटसीवके समयसे ही दोनों राजाओंमें मैत्री थी। उस समय सम्पूर्ण लंकाद्वीप तीन प्रान्तोंमें बँटा था। दक्षिणमें महाबली और कलुगंगाकी दूसरी तरफ़ का प्रान्त रोहण रठ (रोहण राष्ट्र) के नामसे प्रसिद्ध था। देदुरु ओया (नदी) और महाबली गंगासे उत्तरका प्रदेश रज-रठ (राज-राष्ट्र) या पिहित (पीठ) राजधानीके इसी प्रान्तमें होनेसे कहा जाता था। दोनों प्रदेशोंका मध्यवर्ती प्रदेश माया रठ था, जो वर्तमान समयमें सबसे अधिक आबाद प्रदेश है और जिसमें कोलम्बो नगर है। इसीसे लंका भी त्रिकलिङ्गकी तरह, त्रिसिंहलाके नामसे प्रख्यात था और १८१५ ई० तक, कांडीके राजाकी उपाधि त्रिसिंहलेश्वर रही।

जिस समय राजकुमार अशोक अवन्तीके शासक (Viceroy) थे, उसी समय विदिशा के (वर्तमान, भिल्सा) सेठकी कन्या

देवीसे उन्होंने व्याह किया, जिससे २७९ ई० पू० उज्जैनमें उन्हें एक पुत्र और २७७ ई० पू० में एक कन्या हुई, जो महेन्द्र और संघमित्राके नामसे संसारमें प्रसिद्ध हैं। धर्माशोकने आचार्य मोग्गलिपुत्त तिस्समोग्गसे प्रेरित हो धर्मके लिए सबसे उत्कृष्ट उत्सर्ग करनेके अभिप्राय ही से अपने ज्येष्ठ पुत्र और युवराजको उनकी बहन संघमित्राके साथ भिक्षु-संघको अर्पण किया। इस प्रकार ई० पू० २५९ में २० वर्षकी अवस्थामें महेन्द्र संन्यासी हुए। २५२ में तृतीय बौद्ध-संगीति हुई। उसके बाद नाना देशोंमें धर्म प्रचारक आर्य-सभ्यता और धर्मकी पताका फहरानेके लिए भेजे जाने लगे। उस समय संन्यासी महेन्द्रके भागमें सिंहलद्वीप पड़ा। वह देवानाम्प्रिय तिष्यके अभिषेकके थोड़े ही समय बाद २४७ ई० पू० में ज्येष्ठ-पूर्णिमाको लंकाके मिश्रक पर्वतपर (जो पीछेसे चैत्य पर्वत और आजकल मिहिन्तले के नाम से प्रसिद्ध है) पहुँचे। उसी दिन शिकारके लिए गये हुए देवानाम्प्रिय बौद्ध-धर्ममें दीक्षित किये गए। एक महीनेके भीतर ही दूर दूर तक के लाखों आदमी त्रिशरण-परायण हो गये। उस समयकी लंकाकी भाषा और उत्तर-भारतीय भाषामें नाम-मात्रका अन्तर था अक्षर भी ब्राह्मी ही थे। इस प्रकार महेन्द्रके लिए भाषाकी कोई कठिनाई न थी। उनके प्रयत्न करने पर भी यह न छिप सका कि यह फटा चीथड़ा धारण करनेवाला अपूर्व धर्म-प्रचारक सम्राट् अशोकका ज्येष्ठ पुत्र है। दूसरे वर्ष २४६ ई० पू० में भिक्षुणी-संघ स्थापन कर, धर्म-प्रचारके लिए, बुद्ध-गयासे महाबोधि वृक्षकी

एक शाखा लेकर संन्यासिनी संघमित्राने भी लंकाकी भूमिको पवित्र किया। आज बाईस सौ वर्ष बीत गये। संसारमें न जाने कितने परिवर्तन हुए। भारत कहाँसे कहाँ पहुँच गया। तो भी वह संसारका सबसे पुराना और पवित्र वृक्ष अनुराधपुरमें अपने उसी स्थानपर विराजमान है। वह स्वयं लंका और भारत-वर्षके सम्बन्धका जीवित इतिहास है। महान् महेन्द्र २५९ ई० पू० और भगवती संघमित्रा २५८ ई० पू० में मोक्ष-धामको सिधारे।

यहाँ एक-दो बातोंकी चर्चा और आवश्यक है। २३७ ई० पू० में जब देवानाम्प्रियके भाई सूरतिष्य राजा थे, द्राविड़ोंने लङ्कापर अधिकार जमाया। १४५-१०१ ई० पू० तक महामना, न्यायमूर्ति, द्राविड़-सन्तान एलार अनुराधपुरके छत्रपति थे। इन्होंने रथके पहियेके नीचे एक बछड़ेके दबकर मर जाने पर अपने प्रिय पुत्रको मरवाकर अपने न्यायका परिचय दिया।

जिस समय प्रायः समस्त लङ्काद्वीप द्राविड़ोंके हाथमें था उसी समय लङ्काके दक्षिणी समुद्र-तटपर महाग्राम मागम में, देवानाम्प्रियके भाई महानागके प्रपौत्र, काक-वर्ण तिष्य रोहणके जङ्गली प्रदेशपर सिंहलकी स्वतंत्र ध्वजा फहरा रहे थे। इन्हींके यहाँ विहार-देवीके गर्भसे, लङ्का-माताका अद्भुत साहसी, अद्वितीय, गुणैकपक्षपाती, धर्म-प्राण, प्रात [illegible] हुआ। होनहार बिरवान के, [illegible] चीकने पात। एक समय [illegible]

ग्रामणी और उसके छोटे भाई श्रद्धातिष्यको एक थालीपर बैठा-कर, पिताने प्रतिज्ञा-करानी चाही कि वे कभी एक दूसरेसे बिगाड़ न करेंगे। राजकुमार ग्रामणीने सहर्ष स्वीकार किया। जब पिताने इस प्रतिज्ञाके साथ यह कह कर दूसरे कवलको खानेके लिए कहा कि वह महाबली गंगाके उस पारकी ओर दृष्टि न डालेंगे तब क्रोधसे विह्वल बालक ग्रामणीने उस कवलको वहीं पटक दिया और उठकर चारपाईपर जाकर पैर समेट कर लेट गया। माताने पूछा—पुत्र, पैर समेट कर क्यों सोये हो।* बालकने उत्तर दिया—'मा! गंगाके उस पार द्राविड़ हैं और दूसरी तरफ़ महासमुद्र, पैर पसार कर मैं कैसे सोऊँ?'। तरुण कुमारने कुछ तैयारीके बाद उत्तर देशपर चढ़ाई करनेका इरादा किया। किन्तु पिताने न माना। कुमारने समझाया। किन्तु फिर भी पिताका साहस न हुआ। इसपर कुमारने राजाके पास चूड़ी और साड़ी भेजदी। पिताके साथ इसी विरोधके लिए ग्रामणीका नाम 'दुष्ट' ग्रामणी (सिंहल—'दुदुगेमुनु') पड़ा। लेकिन माता विहारदेवी जीजीबाई थीं। उसने सदा पुत्रका उत्साह बढ़ाया। युद्धमें भी दैवी-रक्षाके रूपमें वे पुत्रके साथ रहीं। द्रविड़ भी कम शक्तिशाली न थे। उन्होंने एक एक इञ्च भूमिके लिए कठोर युद्ध किया, किन्तु दुष्टग्रामणीके अदम्य उत्साह और

---

*गंगापारिम [illegible] कमिळा इतो गोठमहोदधि।
"कथं पसारितोगोहं निपज्जामि०।"—महावंश २२-२६

(पोलन्नारुव) महाराजा निःशंकमल्ल

महन्त—बौद्धभिक्षु

अपूर्व शौर्य, जिसके पीछे सारी सिंहलजातिकी विदेशियोंके प्रति घृणा मिलकर ऐसी शक्ति बन गई थी, के कारण उस पर विजय प्राप्त करना द्रविड़ोंके लिए असम्भव थी।

जिस समय अन्तिम बार दुष्टग्रामणी और एलारकी अध्यक्षतामें सिंहल और द्रविड़ सेनायें अनुराधपुरके पास एकत्र हुई उस समय दोनों वीरोंने निश्चय किया कि क्यों इतने प्राणियोंका संहार किया जाय, आओ हमीं दोनों लड़ें। जो जीतेगा उसके हाथ लंकाका राज्य रहेगा। अनुराधपुरके दक्षिण-द्वारके पास ही प्रतापी एलार वीर दुष्टग्रामणीके हाथसे मारा गया। वीर-पूजक गुणग्राही दुष्टग्रामणीने राजोचित सत्कार और सम्मानके साथ राजा एलारका अग्नि-संस्कार किया। उसकी अस्थियोंपर उसने एक बड़ा स्तूप बनाया। महापुरुष एलारके सामाधिके पास जलूसका बाजा आदि रोक देनेका जो रवाज ई० पू० १०१ में प्रचलित हुआ वह सिंहल-जातिके अन्तिम स्वतंत्रताके दिनों तक अटूट बना रहा है। एक अँगरेज लेखक लिखता है, १८१५ ई० में जिस समय अन्तिम सिंहलेश्वर श्रीविक्रम राजसिंह अँगरेजोंसे पराजित हो अपने प्राणोंके लिए इधर-उधर भटक रहा था उस समय शत्रुओंसे पीछा किया जाता हुआ जब वह वीर एलारकी समाधिके समीप पहुँचा और उसे यह मालूम हुआ तब वह तुरन्त अपनी सवारीसे उतर कर पैदल निश्चित सीमा तक गया। दुष्ट-ग्रामणीकी सन्तानने अपने स्वतंत्र जीवनके अन्तिम क्षण तक उस पवित्र भावको किस तरह निबाहा, इसका यह एक अनुपम दृष्टान्त मा

महाराज दुष्टग्रामणीने २४ वर्ष राज्य-शासन किया। उसने अपने आदर्शको इन शब्दोंमें प्रकट किया—'मेरा यह प्रयत्न अपने लिए राजसी वैभव और आनन्द प्राप्त करनेके लिए नहीं है, बल्कि (सिंहल-जातीय) धर्मकी पुनः स्थापनाके लिए। ई० पू० १३७ में जब वह संसारके सबसे बड़े (मिस्री पिरामिडसे भी) स्तूपको पूर्ण न कर सका था तभी मृत्युका सन्देश पहुँचा। भाईकी व्याकुलताको देखकर युवराज श्रद्धातिष्यने स्तूपको चारों ओर अलंकृत वस्त्रसे आच्छादित कर कहा कि चैत्य तैयार हो गया। राजाने अपने आँखोंसे देखनेकी इच्छा प्रकट की; और उसे 'पूर्ण' देख बड़े शान्तिपूर्वक इस सिंहल-जाति—नहीं निखिल आर्य-जाति—के अप्रतिम पुत्रने अपनी अन्तिम लीला संवरण की।

ईसाकी चौथी शताब्दी तक लंका भाषा, भेष, और अक्षरमें बिलकुल उत्तरी भारतसा रहा। उत्तरी भारतकी भाँति यहाँ भी सातवीं, आठवीं शताब्दियोंका इतिहास जातिके कलह निर्बलता तथा अज्ञेयताके घोर अन्धकारमें आच्छादित है। इसके बाद अनुराधपुरके साथ साथ लंकाके हृदयमें कुछ धुकधुकी सी मालूम होती है। द्वितीयसेनने (८६६-९०१ ई०) अच्छी शक्ति पैदा की। उसके बाद सौ वर्ष तक और अनुराधपुरको लंकाकी राजधानी होनेका सौभाग्य रहा। १००१ ई० में वह सर्वदाके लिए छीन लिया गया।

लंका-वासी आर्योंके दो सबसे बड़े पर्व हैं—एक वैशाख

पूर्णिमा, जिस दिन भगवान् गौतमने जन्म, बुद्धत्व और निर्वाण प्राप्त किया और दूसरा ज्येष्ठ पूर्णिमा, जिस दिन संन्यासी महेन्द्रने लंका-द्वीपमें पदार्पण किया और सिंहलेश्वर देवानाम्प्रियको बुद्ध-धर्म और संघकी शरणमें किया। अबकी बार मुझे भी उक्त समयपर अनुराधपुर और मिहिन्तलेकी पुनीत भूमिके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं यहाँ उसी अनुराधपुरके वर्तमान दृश्यको दिखाना चाहता हूँ, जिसके प्राचीन वैभवका गान अन्यत्र मैं कर चुका हूँ।

लंका-वासी भारतीयोंसे अधिक तड़क-भड़क पसन्द करते हैं, खर्चीलें भी उसी तरह हैं। मेलेके दिनमें आप देखेंगे, मोटरों और मोटर-बसोंकी एक बाढ़सी आ गई है; मानो इनका बाज़ार लगा हुआ है। लोग रेलकी अपेक्षा बसोंको अधिक पसन्द करते हैं, क्योंकि चाल तेज़ होनेके साथ साथ उनमें अपना स्वातंत्र्य रहता है, जहाँ चाहें जायँ, जहाँ चाहें ठहर जायँ। वर्षा और धूपमें ये घरका भी काम देती हैं।

अनुराधपुरकी सबसे प्रिय, सबसे पवित्र और सबसे पुरातन वस्तु वह जय महाबोधि वृक्ष है जो बोध-गयाके उस पुण्य वृक्षकी शाखा है जिसकी शीतल छायामें बैठ कर आजसे २,४५५ वर्ष पूर्व संसारके सबसे बड़े उपदेष्टा सिद्धार्थ गौतमने बुद्धत्व प्राप्त किया था। जयमहाबोधि एक लम्बे-चौड़े चार-पाँच हाथ ऊँचे चबूतरेपर है, जिसके चारों ओर खूब चौड़ी परिक्रमा

चहारदीवारीसे घिरी है। इसका प्रधान द्वार उत्तरकी ओर है। चबूतरेके पूर्ववाले मन्दिरमें भगवान् बुद्धकी अनेक सुन्दर मूर्तियाँ हैं। मेलेके दिनोंमें यहाँ भी वैसी ही भीड़ होती है, जैसी शिवरात्रिको काशी-विश्वनाथके मंदिरमें। दो दिनोंके लिए अनुराधपुर अपनी वर्तमान एकान्तताको भूल जाता है। चारों ओर सहस्र सहस्र यात्रियोंके हृदय और कंठसे निकली 'साधु' 'साधु'की मधुर ध्वनिसे दिगन्त ध्वनित हो जाता है। रात्रिमें सहस्रों बिजलीके लेम्पोंके साथ यात्रियों-द्वारा जलाई गई अगणित मोमबत्तियाँ चारों ओर रातको दिन बनाती हैं। धूपबत्ती, कमल और दूसरे फूल, यही पूजाके प्रधान द्रव्य हैं।

जय महाबोधिके हातेके बाहर, पास ही उत्तर तरफ़, हज़ारों पत्थरके खम्भोंका जङ्गल दिखाई पड़ता है। यही पुराना 'लौह-महाप्रासाद' है, जिसे देवानाम्प्रियने (दुष्ट ग्रामणी ?) भिक्षुओंके रहनेके लिए सात तलका बनाया था। ताँबे-लोहेके रङ्गके खपड़ैलके कारण ही इसका नाम 'लौह-प्रासाद' पड़ा।

लौह-महाप्रासादके उत्तर-पश्चिम कोनेपर महाराज दुष्टग्रामणीका बनाया रत्नमाल्य (रुवन्वल) महाचैत्य है। अनेक शताब्दियों तक बेमरम्मत रहनेके कारण गिर पड़कर यह ईंटोंके एक बड़े ढेरकी तरह रह गया था; जिसपर बहुतसे वृक्ष जमे हुए थे। दूरसे देखनेमें यह एक स्वाभाविक पर्वतसा मालूम होता था। कई सालोंसे अब इसकी मरम्मतका काम चल रहा

है। दो-तिहाईसे ऊपर तक ईंटें चुनी भी जा चुकी हैं।* मेलोंके दिनमें बड़े भक्तिभावसे लोग ईंटें लेकर ऊपर पहुँचाते हुए दिखाई पड़ते हैं। लोगोंका विश्वास है कि जहाँ यह स्तूप है, उस भूमिको भगवान् बुद्धने अपने चरणोंकी धूलिसे पवित्र किया है। महास्तूपके पश्चिमी कोनेपर पत्थरका एक छोटा स्तूप है, जो कि बड़े स्तूपके मूलरूपका नमूना है। पहले स्तूपके चारों ओर पत्थरकी अनेक मूर्तियाँ थीं जिनमेंसे कुछ अब मरम्मत करके स्थान स्थानपर रक्खी गई हैं। इन्हींमें एक मूर्ति महाराज दुष्टग्रामणीकी भी है। पाठक अन्यत्र उसे देखेंगे।

रत्नमाल्यके दक्षिण-पश्चिम, अभयवापीके (वसवक्कुलम्) पास, दुष्टग्रामणीका बनाया दूसरा स्तूप है। दुष्टग्रामणीका नियम था वही भोजन करनेका जो भिक्षु-संघको दिया गया। एक दिन अनजानमें उन्होंने मिर्च अधिक खा ली, जिसके प्रायश्चित्त-स्वरूप यह स्तूप है। इसीलिए इसका नाम 'मिरिसि वट्टी' स्तूप पड़ा। श्यामके राजाने रुपया देकर, गवर्नमेन्ट-द्वारा इसकी मरम्मत कराई थी, किन्तु मरम्मत कच्ची हुई है। यहाँ भी चारों ओर पुराने संघारामोंके ध्वंसावशेष हैं। इन्हींमें पत्थरकी एक बड़ी डोंगीसी है; जो पहले पानी रखनेके काम आती होगी। ऐसी डोंगियाँ अन्यत्र भी कितनी ही हैं।

---

* १९२२ ई० में स्तूप की मरम्मत पूरी हो गई।

मिरिस वट्टीसे दक्षिण तिष्य-वापी (तिस-वेवा) है। देवानाम्प्रियकी यह कीर्ति है। मीलों तक लम्बे फैले हुए अनुराधपुरके ये ताल सिर्फ शोभाके लिए नहीं हैं। इनसे ही सारे नगरमें जलकी नहरें गई थीं। हजारों बीघे जमीन इनके द्वारा सींची जाती थी। गवर्नमेंटने मरम्मत करके फिर इस जङ्गली भूमिको आबाद करना आरम्भ किया है। तिष्यवापीसे थोड़ा पूर्व हटकर ईश्वरमुनि इसुरमुनिय चैत्य है—एक बड़ी अकेली शिला है, जिसके एक ओर बोधि पीपल है, द्वारके ऊपर चरण-चिह्न। एक ओर एक छोटीसी सुन्दर पुष्करिणी है, जिसकी बगलमें शिलासे लगा हुआ विहार है, मूर्तियाँ नई बन रही हैं। किसी समय यह महायान भिक्षुओंका निवास था, जिसके चिह्न अब भी देखनेमें आते हैं। ईसुर मुनियसे दक्षिण थोड़ी दूरपर वेस्स गिरि है। इस छोटी पहाड़ीमें अनेक गुहायें यथा ब्राह्मी-लेख हैं। संघारामोंके ध्वंसावशेषोंका यहाँ भी बाहुल्य है।

रत्न-माल्य-चैत्यसे प्रायः १ मील पूर्व पुरानी नहरके (जो अब बेकार है) पार जेतवनारामका महास्तूप है। आज-कल इसीको साधारण लोग अभयगिरि कहते हैं, जो ठीक नहीं है। इस स्तूपको राजा महासेनने (२७७-३०४ ई०) बनवाया था। देखनेमें यह एक स्वाभाविक पहाड़ी टीलासा मालूम होता है। अब भी इसके ऊपरका शिखर है, यद्यपि उसका कुछ अंश टूट कर कुछ ही वर्षों पूर्व गिर पड़ा है। यह विशाल स्तूप रत्नमाल्यसे कुछ ही कम ऊँचा है। इसके भी चारों ओर दूर तक पुरातन

संघारामोंके ध्वंसावशेष हैं। परिक्रमाके चारों ओर पत्थरकी पटिओंका पटाव है, जो अब बहुत सी जगह नीचा-ऊँचा हो गया है।

जेतवनारामसे (? अभयगिरि) उत्तर दो मीलपर अभय-गिरि-महाविहार है। रास्ता पुरातन अनुराधपुर नगरके भीतरसे जाता है। देखनेवालेको बाहरसे कुछ नहीं पता लगता, सिवा इसके कि जहाँ-तहाँ पत्थरोंके टुकड़े और ऊँच-नीची भूमि मिलती है। अनुराधपुरका ध्वंसावशेष इतना लम्बा चौड़ा है कि उसके सम्पूर्ण भागोंका खोदना असम्भव है। पचास-साठ वर्ष तक पी० डब्ल्यू० डी० वालोंके लिए भी (सड़क तथा बँगलोंके बनानेके लिए) यह अच्छी खान रहा है। सड़कके पासके कितने भव्य ध्वंसावशेषोंका संहार इस विभागने किया है, यह नहीं कहा जा सकता। अभयगिरि-चैत्यसे कुछ ही दूरपर बड़े ही सुन्दर पत्थरसे बँधे पक्के कुण्ड हैं, जिन्हें कुडा पोकुन कहते हैं। पुराने समयमें नहरसे सम्बद्ध होनेसे ये सर्वदा स्वच्छ जलसे भरे रहते थे। सम्भवतः ये अभयगिरि-महाविहारके भिक्षुओंके स्नानके लिए बनाये गये थे।

वलगम्बाहु (४४, पुनः २८-१५ ई० पू०) भी एक बड़ा ही प्रसिद्ध राजा हुआ है। इसीके शासन-कालमें त्रिपिटक लेख-बद्ध किया गया। उससे पूर्व स्मरण-द्वारा ही त्रिपिटककी रक्षा होती आई थी। जहाँ इस समय अभयगिरि-चैत्य है,

वहाँ पहले गिरि नाम-धारी किसी नंगे जैन साधुका मठ था। महाराज अभय वलगमबाहुने (वलगमबाहु) वहीं इस विहारको बनवा ('अभय' और 'गिरि' मिलाकर) इसका नाम अभयगिरि रक्खा। विहारनिर्माण कर महाराजने इसे महातिष्य स्थविरको अर्पण किया। उस समय महामहेन्द्रके समयसे स्थापित एक ही महाविहार नामक भिक्षुसंघ था। देवानाम्प्रियने अपने मेघवन-उद्यानको भिक्षुसंघके लिए अर्पित किया था। उक्त महाविहारकी सीमामें ही बोधिवृक्ष, लौह-प्रासाद और रत्नमाल्य-स्तूप रुवन्वल दागवा हैं। जिस महातिष्यको अभयगिरि विहार दिया गया उसके चाल-चलन पर पीछे सन्देह हुआ। भिक्षुओंकी सभामें इस पर विचार होनेके समय महादेलियने अपने गुरुका पक्ष लिया। कुछ सुनवाई न होनेपर महादेल ५०० भिक्षुओंके साथ (८९ ई० पू० बैशाख) अभयगिरि चली गई। तबसे लङ्कामें एक दूसरे सम्प्रदायकी नींव पड़ी, जो ईसाकी बारहवीं शताब्दी तक रहा। पृथक् होनेसे थोड़े ही दिनों बाद भारतवर्षसे धर्मरुचि नामक एक महाविद्वान् बौद्ध सन्यासी आये। अभयगिरि वालोंने उनकी शिष्यता स्वीकारकी और अपना नाम 'धर्मरुचिक' रक्खा। स्थविरवादकी (हीनयान) अपेक्षा इनका झुकाव महायानकी ओर ही अधिक था। महाविहार और अभयगिरिकी सदा आपसमें प्रतिद्वन्द्विता रही।

तिस्स के (२१५-२३७ ई०) समय अभयगिरिवालोंने खुल्लमखुल्ला हीनयान त्रिपिटक छोड़ महायान सम्बन्धी वैपुल्य
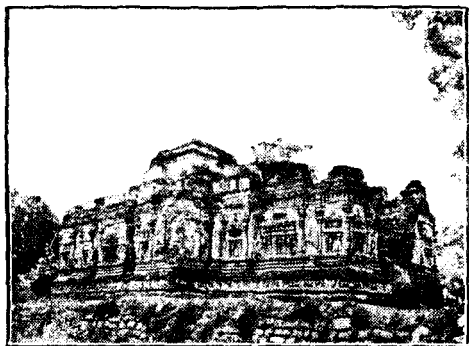
(पोलन्नारुव) 'थूपाराम' (दक्षिण-पूर्वसे)

मलीगावाका हाथी और महावत

लंकाकी मुसलमान स्त्री

पिटक स्वीकार किया। इसपर महाविहारानुयायी राजाने पुस्तकोंको जला डाला और अभयगिरि वासियोंपर कड़ाई की। गोठाभयके (२५४-२६७ ई०) चौथे सालमें जब इन्होंने फिर वैपुल्य पिटक स्वीकार किया तब ३०० भिक्षु उस्सिलियातिष्यकी प्रधानतामें अभय-गिरिसे अलग हो दक्षिण-गिरि-विहारको चले गये। वहाँ इन्होंने एक तीसरे निकायकी (सम्प्रदाय) स्थापना की, जो आगे चलकर अपने एक प्रधान आचार्यके नामसे सागलीय नामसे प्रसिद्ध हुआ।

गोठाभय राजाने महायान-त्रिपिटक स्वीकार करनेके अपराधमें अभयगिरिके ६० प्रधान भिक्षुओंको लोहेसे दागकर देशसे निकाल दिया। इसका फल यह हुआ कि महासेनके (२७७-३०४ ई०) समयमें महाविहारवालोंपर भी खूब अत्याचार हुए। महासेनने लौहप्रासादको ध्वस्त कर दिया और महाविहारके कितने ही संघारामोंको तोड़वा दिया। तो भी ऐसी दुर्घटनायें बहुत नहीं हैं। प्रायः सभी राजे दोनों विहारोंका सम्मान किया करते थे। चीनी संन्यासी फाहियान (४११-४१२ ई०के समीप) लङ्कामें आकर अभयगिरि-विहारमें ही ठहरे थे। उन्होंने अभयगिरिके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

'नगरकी उत्तर-दिशामें जहाँ बुद्धदेवने अपना एक पद-चिह्न स्थापित किया था, राजाने ४०० हाथ ऊँचा सोने-चाँदी, मणि-मुक्तासे सुशोभित एक महान् स्तूप बनवाया। स्तूपके

समीप उन्होंने अभयगिरि नामका एक संघाराम स्थापित किया। इस संघाराममें इस समय पाँच सहस्र भिक्षु निवास करते हैं। इस विहारमें सोना-रूपा-मणि मुक्तासे समलंकृत २० हाथसे अधिक ऊँची एक बुद्ध-प्रतिमा है'।

फाहियानके समय महाविहारमें तीन हज़ार भिक्षु निवास करते थे। इस प्रकार पाँचवीं शताब्दीके आरम्भमें अभयगिरि-विहारकी बड़ी समृद्ध-अवस्था थी। मेघवर्ण (३०४-३३२ ई०) बुद्धदास (३४१-३७० ई०), धातुसेन (४६३-४७९ ई०) द्वितीय अग्रबोधि (५९८-६०८), शील मेघवर्ण (६१४-६२३), दाठो-पतिष्य (द्वि०) (६६४-६७३), पंचम अग्रबोधि (७२६-७३२) द्वितीय महेन्द्र (७८७-८०७) आदि राजाओंने समय समय-पर इसके लिए बहुतसे गाँव दिये और कितने ही विहार बनवाये जिनका वर्णन महावंशमें आता है। द्वितीय महेन्द्रने रत्न-प्रासाद नामक संघाराम बनवाया।

आज अभयगिरिके चारों ओर दूर तक जङ्गली वृक्षोंका (वीर वृक्ष) जो बाग़ लगा हुआ है और जिसमें आज भी जहाँ-तहाँ मट्टीसे कुछ कुछ ऊपर निकली स्तम्भोंकी पंक्तियाँ, अर्द्धपूर्ण बावलियाँ दिखाई पड़ रही हैं, वहाँ किसी समय हज़ारों भिक्षु निवास करते थे। अभयगिरिके पश्चिम तरफ़ बहुतसे संघारामोंका निम्न भाग खोदकर बाहर किया गया है। द्वारोंपरकी सुन्दर अर्द्धचन्द्रशिलाओंपर हाथी, घोड़ा, सिंह और बैलकी मूर्तियाँ

उसी क्रमसे हैं, जैसे सारनाथके अशोकस्तम्भवाले अद्भुत शिखरपर।

अभयगिरिसे दक्षिण-पश्चिम प्रायः १ मील लङ्कारामस्तूप है। लगातार सर्वत्र ध्वंसावशेष चले गये हैं। लङ्काराम एक छोटा स्तूप है, इसीलिए अन्य छोटे स्तूपोंकी भाँति यह भी बड़ी सुरक्षित अवस्थामें है।

लङ्कारामसे एक मीलसे कुछ अधिक दूर दक्षिण स्तूपा-(थूपा)राम है। यही लङ्काका सबसे पुरातन स्तूप है, जिसे देवानाम्प्रियने २४५ या २४४ ई० पू० में महेन्द्रके आदेशके अनुसार बनवाया था। यद्यपि यह वृहत्काय नहीं है, तो भी बहुत सुन्दर और सुरक्षित अवस्था में है। परिक्रमापर कभी छत थी, जिसके खम्भे अब भी चारों ओर खड़े हैं। यहाँ पंडोंकी कोई लूट नहीं है। यात्री अपने आप पूजा करते हैं। विहारका प्रबन्ध भिक्षुओंके हाथमें है। इनका पुनरुद्धारका उद्योग प्रशंसनीय है। हर जगह इनकी इस विषयकी कर्मिष्ठताका पता, अनेक धर्मशालायें तथा पुराने चैत्योंकी मरम्मतके काम दे रहे हैं।

थूपारामसे थोड़ी दूर पूर्व हटकर पुराने दन्तमंदिरका (दलद-मलिगव) खंडहर है। महाराज मेघवर्णके (३०४-३३२ ई०) दशम वर्ष में (३१४ ई०) भगवान् बुद्धका दाँत कलिङ्ग-देशसे यहाँ आया। ऐतिहासकोंका मत है कि दन्तपुरी—जहाँसे दन्तधातु लङ्का आई—जगन्नाथपुरीहीका दूसरा नाम है। यह

मेघवर्ण गुप्त-सम्राट समुद्रगुप्तका समकालीन था। इसीने बुद्धगयामें एक बड़ा संघाराम बनवाया था। यह दन्तधातु लङ्काकी एक विशेष सम्पत्ति है, जो राजधानियोंके साथ साथ स्थान परिवर्त्तन करती हुई आजकल कांडीमें है।

अनुराधपुरसे ८ मील पूर्व, त्रिकोमालीकी सड़कपर, मिहिन्तले ग्राम है। 'महेन्द्र-स्थल' और 'महिन्द-थल'से ही 'मिहिन्तले' शब्द बिगड़ कर बना है। बस्तीसे आध मील चलकर हम पर्वतके नीचे पहुँचते हैं। महेन्द्रके आनेके पूर्व इस पर्वतका नाम मिश्रक पर्वत था, पीछे चैत्यपर्वत, और अब मिहिन्तले। पहाड़पर चढ़नेके लिए १,८४० सीढ़ियाँ हैं। चढ़ाई प्रायः आध मीलकी होगी। पहाड़के नीचे, और रास्तेमें भी बहुतसे ध्वंसावशेष हैं। रास्तेसे बाईं ओर पत्थरकी दो बड़ी लम्बी डोंगियाँ हैं, जिनसे कुछ क़दम ऊपर रास्तेके पास पत्थरकी एक बड़ी पट्टीपर चतुर्थ महेन्द्रका (९७५-९९१ ई०) विस्तृत शिलालेख है। लेख दो बराबरकी पट्टियोंपर सिंहल-भाषामें है। ये पट्टियाँ प्रत्येक ७ फूट ऊँची, चार फुट चौड़ी और दो फुट मोटी तेलिया पत्थरकी (संगखारा) हैं। इस लेखसे तत्कालीन मठ-सम्बन्धी प्रबन्धका विस्तृत ज्ञान होता है।

ऊपर पहुँचनेपर जो पहला स्तूप दिखाई पड़ता है, वही 'अम्बस्थल' विहार है। इसी जगहपर आमके वृक्षके पास महेन्द्रने विस्मय-विमुग्ध राजा देवानाम्प्रियको 'तिष्य' 'तिष्य'

करके सम्बोधित किया था। यहीं तिष्यने धर्म-दीक्षा ग्रहण की। अम्बस्थल-चैत्यसे पूर्व-दक्षिणकी शिलाके विषयमें कहा जाता है कि जम्बूद्वीपसे (भारतवर्ष) आकाश-मार्ग-द्वारा चलकर महेन्द्र इसीपर उतरे थे। पहाड़पर कुछ और भी स्तूप हैं। अम्बस्थलसे दूसरी ओर कुछ नीचे उतर कर वह गुफा है जिसमें संन्यासी महेन्द्र रहा करते थे। इसमें आसनके बराबर पत्थर छीलकर चिकना बनाया हुआ है। महेन्द्रका अधिकतर निवास मिश्रक पर्वत ही पर रहा। संघमित्रा अपनी प्रधान शिष्या देवानाम्प्रियकी बहन भिक्षुणी अनुलाके साथ अनुराधपुरमें ही भिक्षुणी आराममें रहती थी। मिहिन्तलेके जंगलोंमें संघारामके ध्वंसावशेष बहुत दूर तक पाये जाते हैं। कई एक पुष्करिणियाँ पोकुनी भी हैं। कालुदायी पुष्करिणी एक मामूली तालाबके बराबर है। तो भी इसमें घड़ियालोंका भय है। लङ्काके सभी जलाशयोंकी यही बात है।

[२]

पोलन्नारुव या पुलस्त्यपुर

मैं अपने पिछले लेखमें अनुराधपुरका वर्णन कर चुका हूँ। अनुराधपुर ग्यारहवीं शताब्दीके आरम्भ तक लङ्काकी राजधानी रहा। आठवीं शताब्दीके आरम्भ हीसे उसकी श्री नष्ट होने लगी। तामिलोंके बार बार आक्रमणोंने उसे अरक्षित बना दिया था। प्रथमसेन (मत्वल सेन ८४६ ई०) पांड्य सेनासे पराजित होकर पोलन्नारुव चला आया और तबसे पोलन्नारुवको लङ्काकी राजधानी होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। परन्तु इसके बाद भी सवा दो सौ वर्ष तक अनुराधपुर सर्वथा छोड़ नहीं दिया गया था। राजाओंका अभिषेक वहीं होता था। तामिलोंका भय कम होते ही, फिर दरबार पोलन्नारुवसे अनुराधपुर चला जाता था। १०७० ई० से १२१५ तक पोलन्नारुव एक मात्र राजधानी रहा। इन साढ़े तीन सौ वर्षोंमें पोलन्नारुव एक बड़ा ही समृद्धिशाली नगर बन गया था।

पोलन्नारुवका संस्कृत नाम पुलस्त्यपुर है। 'पोलन' एक जातिके

काले साँपको कहते हैं। जहाँ पीछे यह नगर बसा, वहाँ इस जातिका एक साँप मारा गया था, इसी लिए पीछेसे नगरका भी नाम पोलन्नारुव पड़ गया। १०१७ ई०में चोलराजाने लङ्का-विजय कर इसका नाम जननाथपुर रक्खा। १०७० ई०के करीब विजयबाहुने फिर सिंहलको स्वतन्त्र किया और तब इसका नाम विजयराजपुर पड़ा। तो भी प्राचीन पाली और सिंहल-ग्रन्थोंमें पुलस्त्यपुर और पोलन्नारुव ही अधिक देखे जाते हैं। अनुराध-पुरकी तरह पोलन्नारुव भी आज जन-शून्य है। इसके पुरातन खंडहर चीते और हाथियोंके क्रीड़ास्थल हैं। मीलों तक घोर जङ्गल है। दर्शकोंको इनमें अकेले जानेकी भी हिम्मत नहीं होती।

पोलन्नारुवके नाना स्थानोंका वर्णन करनेके पहले उसके पूर्वकालीन इतिहासका सिंहावलोकन कर लेना आवश्यक है। प्रथमसेनके पराजयके साथ साथ अनुराधपुरका पतन और पोलन्नारुवका उत्थान आरम्भ होता है। प्रथमसेनके भतीजे, सेन द्वितीयने (८६६-९०१ ई०) न केवल सिंहलहीको स्वतन्त्र किया, प्रत्युत पाण्ड्य देशपर चढ़ाई कर मदुराको विजय किया और अपने मनोनीत व्यक्तिको पाण्ड्य-सिंहासनपर बैठाया। दशवीं शताब्दीके आरम्भमें चोल-राज प्रथम परान्तकने (९०७-९५३) लङ्कापर चढ़ाई की तथा अनुराधपुर और पोलन्नारुवके देवालयों और महलोंको ख़ूब लूटा और जलाया। तो भी उसे स्थायी विजय न प्राप्त हुई। बीच बीचमें भी कितने

छेड़खानियाँ होती रहीं। किंतु चोल-सम्राट प्रथम राजराजने (९८५-१०१२) १००१-१००४ के बीच प्रायः सारे सिंहलको विजय कर चोल-साम्राज्यमें मिला लिया। १०१७ ई०में पञ्चम महेन्द्र (सिंहलेश्वर) भी कैदी बनाकर चोलदेश (मद्रास) लाया गया और वहीं उसकी मृत्यु हुई। १०१७ ई०से प्रायः १०७० ई० तक सिंहल चोल-साम्राज्यके अधीन रहा। दक्षिणके छोटे छोटे राजा कुछ स्वतन्त्रसे थे, क्योंकि वहाँ तक पहुँचनेके लिए चोल-सेनाको दुर्गम पर्वत और जङ्गल पार करने पड़ते थे। इन्हीं राजाओंमें कन्नौजके राजा जगतीपाल भी थे, जिन्होंने १०५३-१०५७ ई० तक दक्षिण लङ्काके (रोहण) एक भागपर शासन किया। सम्भवतः ये कन्नौजके परिहार राजपूत-वंशमें महाराज यशःपालके सम्बन्धियोंमें थे। किस कारण उन्हें उत्तरी भारत छोड़ लङ्कामें आना पड़ा, इसका पता नहीं चलता। जगतीपालके विषयमें महावंशमें लिखा है—

> रामन्वयसमुब्भूतो तदायोज्झापुरागतो।
> जगतीपालनामेन विस्सुतो भूभुजत्तजो॥
> रणे विक्कमपण्डुं तं घातयित्वा महब्बलो।
> ततो चत्तारि वस्सानि रज्जंकारेसि रोहणे॥
> तं चोला रणे हत्वा महेसिं धीतरा सह।
> वित्तसारं च सकलं चोलरट्ठं अपेसयुम्॥

महावंश, ५६:१३-१५॥
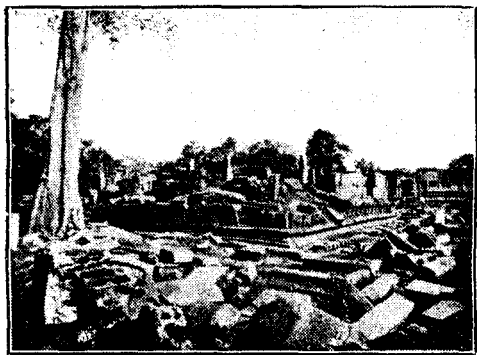
(पोलन्नारुव) 'हट-दा-गे' (उत्तर-पश्चिमसे)
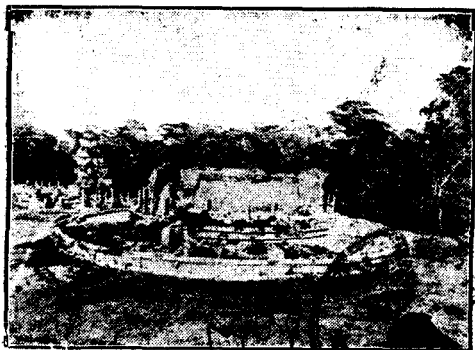
(पोलन्नारुव) 'वट-दा-गे' (दक्षिण-पश्चिमसे)
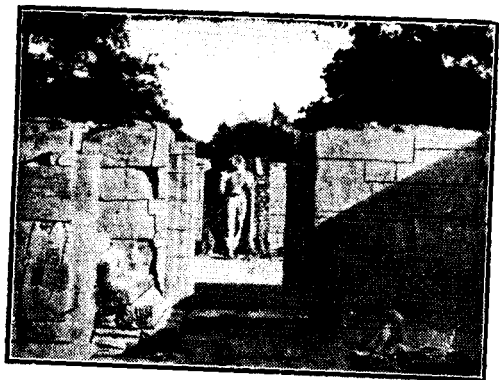
(पोलन्नारुव) 'हट-दा-गे' (प्रथम द्वारसे)

(पोलन्नारुव) 'वेलु वनाराम'

अर्थात्—राजकुमार जगतीपाल, रामके वंशमें पैदा हुए थे, और अयोध्यापुरसे आकर उन्होंने विक्रम पांडु राजाको युद्धमें मरवा चार वर्ष तक रोहणपर (दक्षिण लङ्का) शासन किया। (१०५७ ई०में) चोल जगतीपालको मार, धनके साथ उनकी रानी और कन्याको भी चोल देश ले गए। कितने ही समय तक नजरबन्द रह रानी अपनी कन्या लीलावतीके साथ लङ्काको भाग आई *। महाराज विजयबाहु प्रथमने (१०५६-१११४) लीलावतीसे विवाह किया। लीलावतीसे यशोधरा, जिससे सुगला जिसकी पुत्री लीलावती हुई। यही महान् पराक्रमबाहुकी पटरानी थी, और ११९७-१२००, १२०९-१२१०, १२११-१२१२ तक तीन बार लङ्काके सिंहासनपर बैठी।

विजयबाहु प्रथमने १०७० में चोलोंसे अपने देशको स्वतन्त्र किया। १०७२ ई०में राज्याभिषेक हुआ; और पोलन्नारुवका चोल-नाम जननाथपुर बदलकर विजयराजपुर रक्खा गया है। विजयबाहुके ५५ वर्षके सुदीर्घ शासनमें लङ्काकी समृद्धिके साथ पोलन्नारुवकी भी श्रीवृद्धि ख़ूब हुई। इसने चोलोंके शासनकालमें नष्ट हुई भिक्षुपरंपराको, रामण्यदेशसे पेगू, ब्रह्मा भिक्षुओंको बुलाकर पुनरुज्जीवित किया और पोलन्नारुवमें दन्तधातुके (भगवान् बुद्धके दाँत) लिए मन्दिर बनवाया।

---

* महावंश ५९ : २४।

उस समय लङ्काके राजवंशका विशेष सम्बन्ध कलिङ्ग और पांड्य राजवंशोंसे था। इन विवाहोंके साथ ही उन देशोंसे कितने ही राजवंशीय लङ्कामें आकर बस गए थे, और उन्हें राज्यमें बड़े बड़े पद मिले थे। पोलन्नारुवके इन प्रभावशाली पुरुषोंके तीन दल थे कलिङ्ग, पांड्य और गोवी (स्वदेशी)। सभी दल अपने अपने उम्मेदवारोंको राजगद्दीपर बैठा देखना चाहते थे। विजयबाहुके मरनेके समय पांड्य-दलने जयबाहुको (११०८-११४५) गद्दी पर बैठाया।

स्वार्थान्ध हो उन्होंने राजकीय परम्परा-विरुद्ध पाण्ड्य राजकुमारीके पुत्र वीरबाहुको युवराज बनाया, यद्यपि प्रथाके अनुसार युवराज राजाका भाई या पूर्वराजाका पुत्र ही हो सकता था। पाण्ड्योंके दलने विक्रमबाहुको अपने मार्गमें काँटा समझ उससे पिंड छुड़ाना चाहा, किन्तु उन्हें पराजित होना पड़ा और विक्रमबाहु प्रथमने (११११-११३२) पोलन्नारुवको विजय कर लिया। इस प्रकार जयबाहुको भागकर रोहणमें शरण लेनी पड़ी, जहाँ वह नाम-मात्रका राजा रह कर मरा। विक्रमबाहुने भिक्षुओंके साथ अनुचित व्यवहार किया, जिससे वे दन्तधातुको लेकर रोहणको चले गए। राजाके मरनेके बाद उसका पुत्र द्वितीय गजबाहु (११३१-११५३) राजसिंहासनपर बैठा। उस समय दक्षिण लङ्का रोहण में तीन भाई—मानाभरण वीरबाहु, कीर्ति श्री मेघ और श्री वल्लभ—राज करते थे। ये तीनों विजयबाहु प्रथम और जयबाहु प्रथमकी

बहन मित्राके लड़के थे जो एक पाण्ड्य राजकुमारको ब्याही गई थी।

प्रथम विजयबाहुकी कन्या और विक्रमबाहु द्वितीयकी बहन रत्नावली मानाभरणको ब्याही गई थी। इसीसे दक्षिणके पुंखग्राममें एक बालक पैदा हुआ, जो आगे चलकर लङ्काका सबसे बड़ा प्रतापी राजा, पराक्रमबाहुके नामसे प्रसिद्ध हुआ। पराक्रमका पिता बालपनमें ही मर गया था, इसलिए उसकी माता पुत्रको लेकर श्रीवल्लभके पास चली गई। दुष्ट ग्रामणीकी भाँति बालक पराक्रम भी महामनस्वी था।

जवान होते ही वह अपने चाचासे पूछे बिना ही कुछ सेना लेकर चल पड़ा और थोड़े ही दिनोंमें अपनी राजनीतिज्ञता और वीरताके बलपर मार्गकी सभी कठिनाइयोंको दूर करता पोलन्नारुव पहुँच गया। मामा गजबाहुने भाँजेकी वीरतापर मुग्ध हो, उसे अपने पास रख लिया। कुछ समय वहाँ रह कर वह फिर अपने चाचाके पास चला आया और चाचाके मरने-पर रोहणके सिंहासनपर बैठा।

पराक्रमने अपने राज्यकी समृद्धिके लिए उस तरुणावस्थामें भी बहुतसे राजनैतिक दूरदर्शिता-परिचायक काम किये। उसने सिंचाईके लिए कितनी ही झीलें बनवाईं। पर पराक्रमसा मनस्वी व्यक्ति एक छोटेसे प्रदेशके राज्यसे कब सन्तुष्ट रह सकता था। थोड़े ही दिनों बाद उसने फिर गजबाहुपर

चढ़ाई कर दी, और कुछ ही दिनोंमें उसने पोलन्नारुव पहुँचकर गजबाहुको बन्दी कर लिया। लेकिन इसी बीचमें उसका चचेरा भाई मानाभरण (श्रीवल्लभका पुत्र) राजाकी सहायताके लिए पहुँच गया। इससे पराक्रमको गजबाहु और पोलन्नारुव छोड़ लौट जाना पड़ा। किन्तु थोड़े ही दिनों बाद महाराज गजबाहुको मानाभरणके दुःस्वभावका अनुभव होने लगा और उन्होंने पराक्रमसे मदद माँगी। पराक्रमने गजबाहुको मुक्त कराया, किन्तु उसके सेनापति फिर भी लड़े बिना न रहे। पराक्रमने विजय प्राप्त करनेपर भी गजबाहुके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया, और उसके मरनेके बाद ही अपना राज्याभिषेक कराया।

अब राजा पराक्रम सारे लंकाका शासक था। ११६५ ई०में सिहलीय राजदूतके अपमानके कारण रामण्यके पेगू, ब्रह्मा राजासे युद्ध छिड़ गया। राजा युद्धमें मारा गया, और उसके स्थानपर दूसरेको बैठा सिंहल-सेनाने सन्धि कर ली। ११६८ ई०में पराक्रमकी सेना पांड्य राजाकी सहायताके लिए चोलोंसे लड़ने द्रविड़ देश गई। उसके वहाँ पहुँचनेसे पूर्व ही पांड्य राजा यद्यपि मारा जा चुका था, तो भी पराक्रमकी सेनाने जाकर चोलोंको पराजित कर मदुराको अपने अधिकारमें कर लिया। कुलशेखरकी (चोल राजा) हार हुई। चोल देशसे हज़ारों आदमी पकड़कर लङ्का लाये गये और वे चोलोंके समयमें ध्वस्त की गई इमारतोंकी मरम्मतके कामपर लगाये गये।

रामेश्वरकी खाड़ीके पार रामनदके समीप पराक्रमकी सेनाने पराक्रमपुरके नामसे एक क़िला बनाया।

पराक्रमकी समुद्र पार तक विजय ही उसको महान् नहीं सिद्ध करती है। उसने अपने देशकी भलाईके लिए कितने ही और भी काम किये। उसने अपने मन्त्रीसे कहा था—'हमें अपने देशमें वर्षाकी एक बूंद भी मनुष्योंको बिना कुछ फ़ायदा पहुँचाये समुद्रमें न जाने देना चाहिए। हमारे राज्यमें भूमिका छोटे से छोटा टुकड़ा भी बिना कुछ पैदा किये नहीं रहना चाहिए, उसने अम्बन गङ्गासे नहर निकाल कर थूपावेवासे मिला दी, इसी तरह और भी बड़ी बड़ी झीलें तैयारकर, चारों ओर सिंचाईके लिए नहरें निकाल दीं। इन झीलोंको आज भी देखनेसे उनका नाम 'पराक्रम-समुद्र' ठीक ही मालूम होता है। शासनके लिए उसने ये पद स्थापित किये, अधिकार (मंत्री), सेनाविरट (सेनापति), एपा (युवराज), माया (द्वितीय युवराज), महलेन (स्वराष्ट्र-सचिव), महरेटिन (अन्तर्राष्ट्र-सचिव), अनुन (द्वितीय अन्तर्राष्ट्र-सचिव) सभापति, सितुन (व्यापार-मन्त्री), सिरित लेना (व्यवस्था मन्त्री) दुलेन (लेख संग्रहा-वधायक), विपतिन (चरनायक), महविदान (प्रधान वैद्य), महनेकेतन (प्रधान ज्योतिषी), और धम पसकन (शिक्षाध्यक्ष) पराक्रमबाहुके बनवाये हुए भव्य विहारोंमें कुछ ये हैं—पूर्वाराम, दक्षिणाराम, पश्चिमाराम, उत्तराराम, कपिलवस्तु, ऋषिपतन, कुसीनाराराम, वेलुवनाराम, जेतवनाराम, लङ्कातिलक, त्रिवक

और एतुवद्-लेन। लेखोमें पराक्रमकी ये उपाधियाँ मिलती हैं—शत्रुराजचोलकुलान्तक, उद्धतराजनिर्मूलन, दुर्लब्धिमथन, दुर्नीतिवारण, प्रकृतज्ञ, सकलदिग्विजय, शत्रुविजय, शरणागत, वज्रपंजर, परमत्रभेदविक्रमप्रतापश्रकङ्कक, सर्वशत्रुशिरोमणिप्रक्रियानुक्रिया निश्चय, परराजगोधूर्जटि, नृहरिकैरवराजहंस, परनारीसहोदर, अरिराज- वैश्याभुजंग। पोलन्नारुवमें इन नामोंके नामसे अलग अलग बुर्ज बने थे। तीन हज़ार सात सौ भिक्षुओंके भोजनका प्रबन्ध राजाकी ओरसे होता था। उस समयके पोलन्नारुवके सम्बन्धमें पालीका एक प्राचीन श्लोक है—

सोत्थि प्पसत्थजनता जनताणभूत ,
भूपालसीलरमणी रमणीय रूपा।
फीतापुलत्थिनगरी नगरीति तुंग ,
गेहा महाधिपवरा पवरा पुरानम्॥

महान् पराक्रमबाहुकी मृत्युके बाद उसका भांजा विजयबाहु एक ही वर्ष तक राज्य करने पाया कि उसको महेन्द्रने मार डाला। लेकिन युवराज निःशङ्कने शीघ्र ही हत्यारेको दंड दिया। इस प्रकार निःशङ्क मल्ल (११८७-११९६ ई०) लङ्काके सिंहासनपर बैठा। इस राजाका पूरा नाम "श्री संघबोधि कलिङ्ग पराक्रमबाहु वीरराज कीर्ति निःशक मल्ल अप्रतिमल्ल चक्रवर्ती" था। ये सिंह-पुरके (आन्ध्र देश शीकाकोलके समीप) राजा जयगोपके पुत्र थे जो कलिङ्गके चक्रवर्ती या पूर्वीय गङ्गवंशसे सम्बन्ध रखते

थे। माताका नाम पार्वती महादेवी था। निःशङ्कने नौ वर्ष शासन किया और लङ्काको समृद्धिशाली बनानेका प्रयत्न किया। निःशङ्कने भी दक्षिण भारतपर चढ़ाई करनेके लिए सेना भेजी। उसने अपने विजयके उपलक्ष्यमें रामेश्वरमें एक जयस्तम्भ और निःशङ्केश्वर महादेवकी स्थापना की। उसने लाखों रुपये लगाकर बड़े ठाठसे दम्बुल्लके पुरातन गुहाविहारका प्रतिसंस्करण भी किया। निःशङ्कके शिलालेख में लिखा है—

"पहलेके राजाओंके चौगुने करके कारण प्रजा ग़रीब हो गई थी। उसने निःशंक ने पाँच वर्षका कर माफ़ कर दिया। उसने तीन बार लङ्कामें चारों ओरकी यात्रा की। गांव, क़स्बे, शहर, वन, पर्वत, दुर्ग देखे। सारी लङ्का इस प्रकार उसके लिए हस्तामलकवत् है। उसने जङ्गलों और बस्तियोंको, चारों ओर दस्युओंके भयसे इस प्रकार निर्मुक्त कर दिया कि एक स्त्री भी बहुमूल्य रत्न लिये हुए एक छोरसे दूसरे छोर चली जाय, और कोई नहीं पूछे, कि क्या है।.....दो बार उसने पांड्योंको परास्त किया।......चौल और गौड आदि राजाओंसे मित्रताका सम्बन्ध स्थापित किया।... जम्बूद्वीप और लङ्कामें उसने अनेक धर्मशालायें स्थापित कीं।"

"उसने तीन बड़े मण्डप बनवाये, और वेलुवनकी भाँति एक दूसरा कलिङ्गवन तैयार कराया। उसने कलिङ्ग, वेंगी, कर्नाट, गुर्जर आदि देशोंकी राजकुमारियोंसे विवाह किया।....अपनी

यात्रामें उसने 'गवु' (गव्यूति=२ कोस) पर निःशङ्क 'गवु'के नामसे पत्थर लगवाये।'

निःशङ्कमल्ल शुद्ध कलिङ्गवंशका था, उसका भाई साहसमल्ल २३ अगस्त सन् १२०० ई०के सिंहासनारूढ़ हुआ। सिंहल-इतिहासमें यह एक ऐसा दिन है, जो अच्छी तरह निश्चित हो चुका है। इसके बाद राज-सिंहासनके लिए तरह तरहके झगड़े खड़े होने लगे। पोलन्नारुव षड्यन्त्रोंका केन्द्र हो गया। पराक्रम-बाहुकी रानी लीलावती तीन बार, और निःशङ्ककी रानी कल्याण-वती एक बार सिंहासनपर बैठाई गई और सिंहासनच्युत की गई। किसीका शासन चिरस्थायी नहीं रहा। अन्तमें कलिङ्ग-विजयबाहुने, जिसका दूसरा नाम माघ भी है, केरल-सेनाके साथ लङ्का पर चढ़ाई की और १२१५ ई०में सिंहासनपर बैठा। इसका शासन सफल होता, यदि वह प्रजाके धर्मके बौद्ध धर्म प्रति दुर्व्यवहार न करता। इसके अत्याचारसे पीड़ित हो भिक्षु अपनी अपनी पुस्तकें छोड़ पोलन्नारुवसे दूसरी जगहोंको चले गये। माघके २१ वर्षके शासनके अन्तमें (१२२६ ई०) पोलन्नारुव भी अपने वैभवके अन्तपर पहुँच गया। इसके बाद दम्बदेनिय जम्बुद्रोणि राजधानी हुई।

वर्तमान पोलन्नारुव चारों ओर जङ्गलसे घिरा, दस बारह घरोंका एक छोटा सा गाँव है। ये घर भी दूकानदारोंके हैं, जो आने जानेवाले यात्रियोंके भरोसे ही पर बसे हुए हैं। इस स्थानपर

मलेरियाका अधिक प्रकोप रहता है। इसीलिए यद्यपि सरकारने झीलकी मरम्मत करा दी है, और सिंचाईकी सुविधा भी हो गई है तो भी आबादी बढ़ नहीं रही है। आस-पास मुसलमानोंके एकाध गाँव हैं, जो खेतीपर गुजर करते हैं। पोलन्नारुव अनेक बड़े भव्य ध्वंसावशेषों से परिपूर्ण है। सबसे पहले पुराना राजमहल मिलता है। इसके चारों तरफ़ ईंटकी बड़ी मजबूत दीवार थी, जिसके अनेक अंश अब भी मौजूद हैं। महल भी ईंटों का ही है। इसका पुराना नाम वैजयन्त है। जिस प्रकार अनुराधपुरमें इमारतोंके लिए पत्थरका प्रयोग अधिक दीख पड़ता है, वैसे ही यहाँ ईंटोंका। भारतवर्षमें भी पत्थरके बाद ईंटोंका युग आरम्भ होता है। राजमहलके उत्तर तरफ़ थूपाराम है। थूपाराम ईंटोंका बना होनेपर भी एक बड़ी ही अद्भुत इमारत है। पोलन्नारुवकी सारी पुरानी इमारतों में यही एक इमारत है जिसकी छत अभी तक सुरक्षित है। पुरातत्व-विभागने इसकी रक्षाके लिए बड़ा प्रयत्न किया है और इसकी दरारों और दूसरे कमजोर भागोंकी मरम्मत करा दी है। इसके पास ही वटडागेका गोलाकार ध्वंसावशेष है। लङ्काकी बौद्ध पाषाणकी इमारतोंका यह बहुत ही सुन्दर नमूना है। एक ऊँची वेदीके बीचमें एक छोटेसे स्तूपके चारों तरफ़ चार सुन्दर प्रतिमायें थीं। इस वेदीके चारों ओर एक परिक्रमा है, जिसके बाद गोल दीवार है। इसके ऊपर पहले ताँबेकी छत थी। सीढ़ियाँ, द्वार, बाहरी दीवारकी नींव सभी बड़ी ही सुन्दर हैं। पुरातत्व-विभाग के अध्यक्ष ने लिखा है—

'No photograph or drawing can adequately reproduce, nor can words but faintly outline, the inexpressible charm of this beautifully moulded platform. Some idea of its details may be gathered from the... description...; but the wata-da-ge stylobate must be seen, and its functional members thoroughly studied, to be appreciated to the full.

The stylobate to the inner and upper platform, 5ft. 3in. in full height, was rivetted with stonework exhibiting in its moulded lines and figured dados a combined boldness and grace unrivalled at any other Buddhist shrine, whether at Anuradhapura or Polonnaruwa, and probably in any other Buddhist shrine in Ceylon.'

(*Arch. S. Ceylon*, 1904)

बटदागेके सामने उत्तर तरफ़ हटदागे है। कहते हैं यह साठ दिनमें बनाया गया था, इसीलिए इसका नाम हट-दा-गे षष्ठिधातुगृह या साठ दिनमें बना धातुगृह पड़ा। पुरातत्ववालोंने पत्थरोंके जोड़में बहुत सी जगहोंपर एक एक इञ्चकी कमी-बेशी देखी थी। यह भी शायद उसी जल्दीका परिणाम हो। और इमारतोंकी भाँति यह भी आगसे जलाया गया था, शायद चोलोंके द्वारा। गर्भ-स्थानमें जहाँकी आग अधिक प्रचंड रही होगी,

इमारतको बहुत नुक़सान पहुँचा है। पत्थरके टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं। इन टुकड़ोंको जोड़ पुरातत्व-प्रेमियोंने मूर्त्तियोंकी मरम्मत करनेका प्रयत्न किया है। पोलन्नारुवकी अन्य इमारतोंकी भाँति यह भी द्राविड़ ढंगपर बना है। पत्थर और ईंट, दोनोंहीका उपयोग हुआ है।

हटदागेके पूर्व तरफ़ पास ही लम्बी शिलापर विस्तृत शिलालेख है, जिसे गल-पोत पाषाण-पुस्तक कहते हैं। इसके पास ही वह इमारत है, जिसे सत-महल-प्रासाद कहते हैं। यह इमारत ईंटकी बनी है और कम्बोडियाकी इमारतोंसे बहुत मिलती जुलती है। हट-दा-गे और सत-महल-प्रासाद के बीचमें निःशङ्कका बनवाया लतामंडप है, जिसके अब कुछ खम्भे ही रह गये हैं। खम्भोंकी शकल लताकी तरह है, इसीलिए इसका नाम लतामंडप पड़ा। कहते हैं, इसी स्थानपर वह साँप मारा गया था, जिसके नामपर पोलन्नारुव नाम पड़ा। हट-दा-गेके पश्चिम तरफ़ भी दो छोटे विहार हैं। स्तूपाराम, वट-दा-गे, हट-दा-गे, सत-महल प्रासाद और कुछ और छोटे-छोटे विहार, ये सब एक ही घेरेमें हैं। यहाँ पोलन्नारुवका एक प्रधान मठ था।

लंकातिलक, जेतवनाराम बड़े ही विशाल विहार थे। आज भी इनके ईंटोंके महान् कंकाल सात शताब्दियोंके अत्याचार और उपेक्षाके बाद भी कम प्रभाव नहीं डालते। पहले ये सभी इमारतें अजंताकी भाँति, सुन्दर चित्रोंसे अलंकृत थीं। इनका चिह्न अब भी जहाँ-तहाँ देखनेमें आता है। इनमें बुद्ध-प्रतिमायें ईंट और चूनेकी थीं। उत्सवके समय अब भी हजारों यात्री

भक्ति-भावसे इन सुनसान खंडहरों में आते हैं। थोड़ी देरके लिए सैकड़ों मोमबत्तियाँ और धूपबत्तियाँ जलाई जाती हैं। परन्तु उसके बाद फिर इनके पुजारी, वही साँप, बिच्छू, चीते, भालू और समय-समयपर हाथियोंके झुंड ही रहते हैं।

लंका-तिलक विहारसे उत्तर 'किरिवेहेर' का क्षीर-विहार सुन्दर स्तूप है। इसके चारों तरफ़ टूटे-फूटे खम्भे और पुराने मठोंके ध्वंसावशेष हैं। 'किरिवेहेर'से उत्तर दक्षिण 'गलविहार' पाषाणविहार है, जिसका पुराना नाम। उत्तराराम था। यहाँ एक लम्बी शिलापर भगवान् बुद्धकी सोई हुई विशाल प्रतिमा उत्कीर्ण है। इसके सिरहानेकी तरफ़ अब भी आनन्द उसी प्रकार करुणाभरी दृष्टिसे भगवान्के परिनिर्वाणको ही नहीं, बल्कि इस भव्य नगरके भूतकीर्त्ति-प्रदीपके परिनिर्वाणको देख रहे हैं। एक समय था, जब महापराक्रमबाहुके समृद्धिशाली पोलन्नारुवमें इन मूर्त्तियोंकी रक्षा और पूजाके लिए सहस्रों पुरुष नियुक्त थे। नगरवासी सहस्रोंकी संख्यामें नित्य पुष्प-दीप ले पूजाके लिए आते थे। शील और शरणके शब्द, मालूम होता है, मानों अब भी आकाशसे विनष्ट नहीं हुए हैं। उनकी क्षीण किन्तु मधुर ध्वनि मानों अब भी सात शताब्दियोंको भेदकर कानोंमें पहुँच रही है। सोती हुई प्रतिमाकी छातीमें अब भी वह निशान है, जिसे किसी अँगरेज़ शिकारीकी गोलीने किया था। कहते हैं, उसने घृणा और झूठी निर्भीकता दिखलानेके लिए यह गोली मारी थी; लेकिन अभी गोली चलाकर वह दूर नहीं गया था कि

जंगली हाथीने उसका काम तमाम कर दिया। शिलाके दूसरे छोरपर खड़ी बुद्ध-प्रतिमा है। उसके और आनन्दकी प्रतिमाके बीचमें शिला काट कर बनाये सुन्दर मंडपके भीतर शिलोत्कीर्ण ध्यानावस्थित बुद्ध-प्रतिमा है। आगे प्रायः एक मील, पश्चिम तरफ़ जंगलमें ठोस पत्थरका बना शिवालय है। शिल्प शुद्ध द्राविड है। शिवलिंग अब भी भीतर विद्यमान है। परन्तु इस निर्जन स्थानमें शिवके भक्तोंका कहाँ ठिकाना। यद्यपि देवालय छोटा है, तो भी सभी चीज़ें बहुत दृढ़ हैं, और अभी वर्षों तक ज्योंकी त्यों बनी रहेंगी। चोल शासन-कालका यह एक सुन्दर नमूना है।

पुराने नगरसे पश्चिम स्तूपवापी थूपावेवा नामक विशाल झील है। शताब्दियों तक उपेक्षित रहनेके कारण इसके बाँध टूट गये थे। गवर्नमेंटने और कितने ही झीलोंकी भाँति उसकी भी मरम्मत करा दी है। इसी झीलके किनारे डाॅक बँगला है। झीलके किनारे-किनारे प्रायः मील भर चलकर थोड़ी दूरपर शिला खोद कर बनाई प्रायः सात हाथ लम्बी महापराक्रमबाहुकी मूर्त्ति है। दाढ़ी लम्बी है और हाथमें पोथी। सामने उसी पुस्तकालयकी गोल दीवारें खड़ी हैं, जिसमें पराक्रमने पुस्तकालय स्थापित किया था। आज उन पुस्तकोंका यद्यपि कहीं ठिकाना भी नहीं है तो भी मूर्त्तिके हाथकी पोथी बतला रही है कि महान्-पराक्रम सरस्वतीके भी अनन्य उपासक थे।

---

[३]

काण्डी

२ मार्च १८१५ ईस्वीको लङ्का अँगरेज़ोंके अधिकारमें आया। उस समय इस द्वीपकी राजधानी काण्डी थी। जो काण्डी १५० वर्षों तक लङ्काकी राजधानी रही, जिसने पोर्तुगीज़ों, डचोंके बाद अँगरेज़ों तकसे अपनी स्वतन्त्रताके लिए बड़ी वीरता दिखाई, उसी ऐतिहासिक नगरके विषयमें यहाँ मैं कुछ लिखना चाहता हूँ। भौगोलिकोंको मालूम है कि लङ्काका मध्य भाग पहाड़ी है। ये पहाड़ लम्बाईमें अक्षांश ६°, ३०′ से ७°, ३०′ तक और चौड़ाईमें लम्बांश ८०°, ४५′ से ८°, ४५′ तक फैले हुए हैं। इन्हीं पहाड़ोंके तीन सर्वोच्च शृङ्ग हैं—श्रीपाद अथवा समन्तकूट (Adam's peak) ७,३६० फ़ीट, पिदुरुतला गल (Peda) ८,२९६ फ़ीट, किरिगल पोत (Kirigalpotta) ७,८५७ फ़ीट हैं। इन्हीं तीनों उच्च शिखरोंके कारण इस पर्वत-का नाम त्रिकूट पड़ा, और गोसाईं जीने लिखा—'गिरि त्रिकूटपर

बस जहँ लङ्का।' १६वीं शताब्दीके द्वितीयार्द्धके मध्यमें, समुद्र-तटपर स्थित कोट्टेको (कोलम्बोके पास) अरक्षित देखकर ही राजधानी दुर्गम पहाड़ों और जङ्गलोंसे सुरक्षित काण्डी नगरमें लाई गई।

कोलम्बोसे काण्डी ७४ मीलके अन्तरपर समुद्रतलसे १६सौ फ़ीट ऊपर बसा हुआ है। लङ्काकी सभी लाईनें ई० आई० आर०के बराबर चौड़ी हैं। कोलम्बोसे काण्डी, रेलसे साढ़े तीन घंटेका रास्ता है। रंबुक्कन स्टेशनसे रेल पहाड़पर चढ़ना आरम्भ करती है, जहाँसे २२ मीलपर काण्डी है। वैसे तो सुदूर उत्तर और पूर्वको छोड़ सभी लङ्का साल भर 'जनु वसन्त ऋतु रह्यो लुभाई' है। किन्तु यह पहाड़ी सौन्दर्य अद्‌भुत है। रेलवे यात्रीके लिए रंबुक्कनसे काण्डीतकका प्राकृतिक दृश्य अनुपम मालूम होगा। नीचेसे ऊपरतक हरियाली ही हरियाली दिखाई पड़ती है। पहाड़ोंपर रेल साँपकी तरह चलती जान पड़ती है। कभी कुछ समयके लिए गाड़ी घोर अन्धकार-मय सुरङ्गोंमें जाती है, तो कभी खिड़कीके पास ही यात्री हज़ारों फ़ीट नीचे भूतलको देखकर सिहरने लगता है। दूर-दूर तक अनेक हरे-भरे पर्वत-शृङ्ग काले बादलोंसे मिले हुए बहुत ही सुन्दर मालूम होते हैं। स्थान-स्थानपर धानके खेतोंकी हज़ारों फ़ीट ऊँची सीढ़ियाँ हिमालयके किसी कोनेका स्मरण दिलाती हैं। फूलसे लदी हुई हरी-हरी लतायें वृक्षोंको चारों ओरसे ढाँके हुए नीरस मनुष्यके हृदयमें भी सरसता उत्पन्न

कर देती हैं। बीच-बीचमें नारियल और सुपारीके घने वृक्षोंके भीतर काठ और फूसके बने हुए कुटीरोंके सम्मुख, साड़ी पहने हुई खड़ी पार्वत्य स्त्रियाँ, किन्नरियाँ-सी प्रतीत होती हैं। रेलसे २,५०० फ़ीट ऊँचा मनोहर अल्ल-गल्ल शिखर है। नीचेकी तरफ़ भी हरियालीसे ढँकी हज़ार फ़ीट नीचे उपत्यका है। ऐसे तो सदा ही अल्ल-गल्ल सुन्दर है, किन्तु कड़ी वर्षाके बाद इसके चारों ओर जल-प्रपातोंकी श्वेत धारायें ही धारायें दिखाई पड़ती हैं, जिनमेंसे कितनी ही सैकड़ों फ़ीटकी ऊँचाईसे रेलवे लाईनकी ओर गिर कर नीचेकी उपत्यकाकी तरफ़ चली जाती हैं। नीचे-से आये हुए रबर-वृक्षोंके बाद अब बीच-बीचमें चायके बग़ीचे शुरू हो जाते हैं।

इन अद्भुत दृश्योंसे होकर रेल पेरदिनिया पहुँचती है। यहाँसे एक लाईन नुवर एलियाको भी गई है। पेरदिनियासे अगला स्टेशन 'न्यु पेरदिनिया' है। यहाँ ही संसार-प्रसिद्ध वनस्पति-उद्यान है। १५० एकड़में महावली गङ्गाके तटपर यह महा उद्यान अवस्थित है। पहले यहाँ राजाके दिलबहलावके कुछ मकान थे। अब भी कुछ अलंकृत प्रस्तर-स्तम्भ उक्त समयके परिचायक दिखाई पड़ते हैं। यह समुद्र-तलसे १६सौ फ़ीट ऊपर है। मध्यम तापमान ७६°, और निम्नतम ५५° है। साल भरमें वर्षाके १७० मध्यम दिन हैं। वर्षाका माध्यम ८६ इंच प्रतिवर्ष है। उष्ण प्रदेशके सभी वनस्पति यहाँ देखनेमें आते हैं। चारों ओर भीतर भी मोटरके लिए सड़कें हैं। यह उद्यान

कारवाडीकी महिला
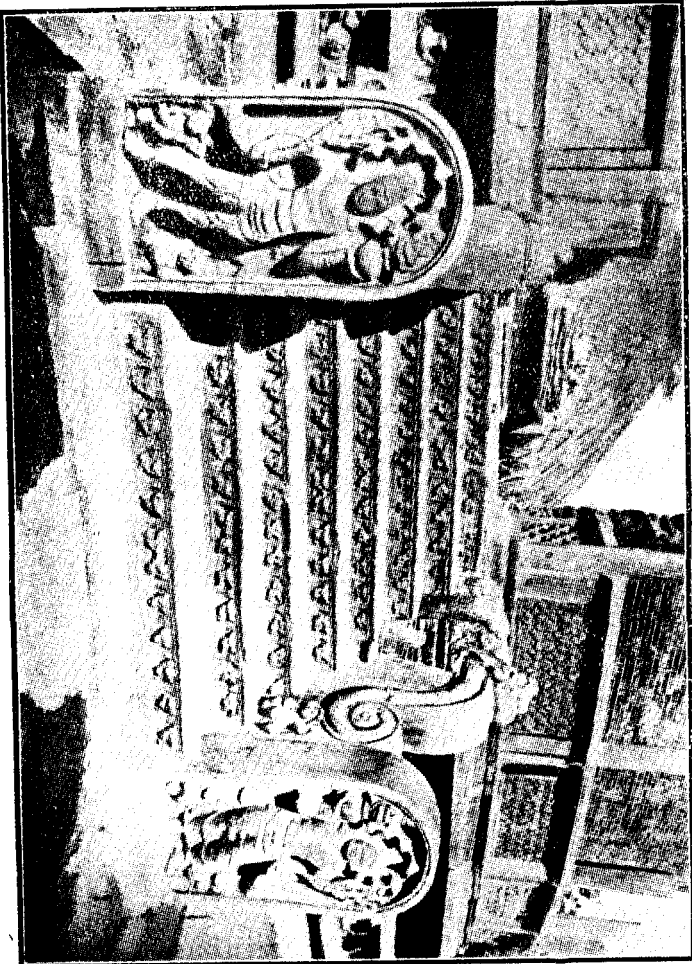
(पोलन्नारुव) 'वट-दा-गे' (पूर्वीय सीढ़ी)

केवल विनोदकी ही सामग्री नहीं है। यहाँ मालियोंकी शिक्षा और नाना भाँतिके बीजों और पौधोंके वितरणका भी प्रबन्ध है। अन्यत्र दिये हुए चित्रोंसे इसके विषयमें पाठक कुछ अनुमान कर सकते हैं।

संख्यामें काण्डी लङ्कामें द्वितीय नगर है। इसकी जन-संख्या ३२ हज़ार है। समुद्रतलसे १६ सौ फ़ीट ऊपर होनेसे कोलम्बोकी अपेक्षा यह अधिक शीतल है। मच्छरोंका नाम नहीं है। काण्डी नगर चारों ओर हरे पहाड़ोंसे घिरी एक छोटीसी उपत्यकामें, एक झीलके वोगम्बर किनारे बसा हुआ है। कहते हैं जिस जगह पुराना राजप्रासाद है, उससे कुछ ऊपर श्रीखण्ड नामक कोई तपस्वी निवास करते थे; उन्हींके नामसे नगर भी श्रीखंड प्रसिद्ध हुआ, जिसका अपभ्रंश काण्डी शब्द है। नगर बसानेके विषयमें प्रसिद्ध है कि. महाराज पराक्रमबाहु तृतीय, (उस समय राजधानी गम्पोलामें थी) १३६० ई०के क़रीब एक नगर बसाना चाहते थे। उन्होंने इसके लिए किसी शुभस्थानकी खोज की। जहाँ आज दन्तमन्दिर है, उसके पास कई जगहोंको खोदकर देखा गया, ज्योतिषीने कहा था—वही स्थान सर्वोत्तम है, जहाँ खोदनेपर प्रथम सफेद मिट्टी निकलेगी, फिर बालू, उसके बाद जल और अन्तमें सफेद कछुआ। ज्योतिषीकी बात सत्य निकली। राजाने उसी स्थानपर अपना महल बनाना चाहा। इसपर ज्योतिषीने यह कहकर मना किया, कि यह अत्यन्त पवित्र स्थान है, यहाँ मन्दिर बनवाना अच्छा होगा। उसी

जगह 'दलद-मलि-गव' बनाया गया। यहाँ पीछे भगवान् बुद्धकी दन्तधातु स्थापित की गई। मन्दिरकी पूर्व दिशामें एक छोटासा तालाब बनाया गया, जिसमें उक्त श्वेत कच्छप रखा गया था। इस तालावका नाम 'किरिमुहुद' क्षीर समुद्र पड़ा। वर्तमान 'बोगम्बर' या 'नुवर वैव'की बड़ी झील उसी स्थानपर बढ़ाकर १८१०-१८१२ ई०में अन्तिम राजा श्रीविक्रम राजसिंहके समयमें बनाई गई। पहले इस स्थानपर निम्न भूमि 'देनिय' थी, पीछे वह राजकीय धानके खेतोंके रूपमें परिणत हुई। पास ही जोतनेके लिए काममें आनेवाले भैंसोंका स्थान था, जो 'मिगोन-आरम्ब' 'महिष-आराम' कहा जाता था। यह स्थान 'मलवत्त पुष्पाराम विहार' मठके पास वह स्थान है, जहाँ 'सुइस होटल' अवस्थित है।

मध्यकालके राजनैतिक उत्पातमें लङ्कामें भिक्षुसङ्घ नष्ट हो गया था। काण्डीके सप्तम राजा कीर्ति श्रीराज सिंहने (१७४७-१७८०) पुनः भिक्षुसङ्घ स्थापित करनेके लिए श्यामदेशसे भिक्षुओंको बुलाया, जिन्होंने कतिपय लङ्का-निवासियोंको भिक्षु बनाकर भिक्षुसङ्घकी पुनः स्थापना की। राजाने भिक्षुओंके रहनेके लिए 'मलवत्त विहार' और 'इसगिरि ऋषिगिरि विहार' दो विहार बनवाये। सारे लङ्काके भिक्षुओंके प्रथम सङ्घराज श्रीशरणङ्कर हुए। जब तक काण्डीमें राजाओंका राजत्व रहा, तब तक बराबर 'मलवत्त विहार'के प्रधान, सङ्घराज होते थे, और 'इसिगिरि विहार'के प्रधान, महानायक। १८१५ के बाद अँगरेजी

राज्य स्थापित होनेपर, अब सङ्घराजका पद नहीं रहा; दोनों ही प्रधान महानायक कहे जाते हैं। तो भी मलवत्त विहारके महानायक सारे लङ्काके संघराज समझे जाते हैं। अभी हालहीमें मलवत्त विहारके महानायकका देहान्त हुआ है। मलवत्त विहारमें २०० भिक्षु रहते हैं। सारे भिक्षुओं द्वारा जीवन भरके-लिए चुने गये २० सभासदोंकी 'कारक-सभा' है। जिसके एक 'नायक' और दो 'उपनायक' होते हैं। नायक या उपनायकके देहावसानपर वही कारक-सभा दूसरा नायक चुनती है। यही व्यवस्था 'इसिगिरि विहार'की भी है।

काण्डी नगर इसी झीलके किनारे उत्तर और पश्चिम ओर बसा हुआ है। झीलके चारों ओर सुन्दर बँगले और पहाड़-वृक्षोंसे हरे-भरे हैं। झीलके चारों ओर कोलतार की हुई सुन्दर सड़क है। काण्डीके ऐतिहासिक स्थानोंमेंसे अधिकतर झीलके उत्तरी तटपर, दन्तमन्दिरके आस-पास हैं। दन्तमन्दिरकी सड़क-से दूसरी तरफ़ झीलके किनारे, जहाँ आज United Service Library (यूनाइटेड सर्विस लाइब्रेरी) है, पुराना रानीघाट था।

'दलदम्मलिगाव' दन्तमन्दिर लङ्काके दो अत्यन्त पवित्र स्थानोंमें है। इसके दर्शनके लिए श्याम, ब्रह्मा और दूसरे देशोंसे भी कितने ही भक्तजन पहुँचते हैं। मन्दिर दो तलोंका है। प्रधान द्वार पश्चिमाभिमुख है। प्रधान द्वारकी सीढ़ियोंपर चढ़नेके समय प्रसिद्ध अर्द्ध 'चन्द्रशिला' मिलती है, जिसपर सारनाथके

अशोकस्तम्भकी तरह हाथी, घोड़ा, सिंह और बैलके चित्र हैं। ऐसी चन्द्रशिलायें लङ्काके सभी पुरातन पवित्र स्थानोंके द्वारोंपर पाई जाती हैं। प्रधान द्वारके भीतर बाईं ओरका रास्ता पुरानी राज-कचहरीकी (आधुनिक भी) ओर जाता है, दाहिनेवाला मन्दिरको। द्वितीय द्वारकी बाहरवाली दीवालोंपर नरककी नाना यातनाओंके चित्र हैं। इस द्वारपर प्रसिद्ध 'मकरतोरण' है। शिल्प बहुत ही सुन्दर है। दाहिने बायें दो मकरोंके (काल्पनिक जन्तु, जिसके पैर बाज़केसे, कान सुअरकेसे, पूँछ मोरसी, मुँह मगरसा, तथा हाथीकी सी सूँड़ है) मुँहसे निकली अलंकृत मेहराब है, जिसके ऊपरी भागपर शार्दूलका मुँह है। यह 'मकर-तोरण' काण्डीके अन्य पुराने मकानों और मन्दिरोंकी भी एक विशेषता है। दर्वाज़ोंमें पीतलकी लगी चूड़ियाँ एक खास विशेषता रखती हैं। द्वितीय द्वारके भीतर अनेक बड़े बड़े प्रस्तर-स्तम्भों वाला १९१६ का बना सभा-मण्डप है। इसके बाद प्रधान दन्तमन्दिर है। इसके चारों ओर परिक्रमा है, फिर मन्दिर-सम्बन्धी आदमियों और सामग्रियोंके लिए मकान हैं। द्वारपर दो जोड़े हाथी-दाँत तथा दो गज-सिंह हैं। द्वारपर यहाँ भी मकर-तोरण है। दर्वाज़ोंपर हाथी-दाँतकी पच्चीकारी, तथा ताँबे सोनेकी चूड़ियाँ हैं। मन्दिरके भीतर एक तङ्ग सीढ़ी है, जिससे 'उडमाले' या उपरितलके मन्दिरका रास्ता है। इसी 'उडमाले'में भगवान् बुद्धकी दन्त-धातु रक्खी हुई है। इसके द्वारपर भी ९ हाथी-दाँत और चाँदीके पत्र जड़े हुए हैं। भीतर लोहेके सीक़चोंके भीतर

चाँदीकी बड़ी स्तूपाकार पिटारी या 'करण्डुवा' है। इस 'करण्डुवाके' भीतर एकके नीचे एक सात छोटे शुद्ध सोनेके 'करण्ड' हैं, जिनपर रत्न और मोती जड़े हुए हैं। सबसे भीतरवाले करण्ड में पवित्र दन्तधातु है, जो रत्नसे बिल्कुल ढँकी हुई है।

दन्तधातुका इतिहास बहुत ही लम्बा है। पाली भाषामें इसपर 'दलद वंश' नामक एक पुस्तक है। लङ्काके प्रसिद्ध इतिहास 'महावंस'में भी इसका इतिहास दिया हुआ है। 'महावंस' ४८३ ई० पूर्वसे १८१५ ई० तकका एक परम प्रामाणिक इतिहास है। महावंसकी कथाका संक्षेप यह है। ४८३ ई० पूर्व भगवान् बुद्धके कुशीनारामें कसया, गोरखपुर परिनिर्वाणके समय भगवान्की दाहिनी दाढ़वाला दाँत बचकर कलिङ्गकी (गोदावरी, विजगापट्टन, गञ्जामके ज़िले) राजधानीमें पहुँचा। यहाँपर वह आठ सौ वर्ष तक रहा। ३०५ ई०के क़रीब कलिङ्गकी अवस्था अशान्त होनेसे, वहाँके राजाकी आज्ञासे शिरके बालोंमें छिपा कर एक राजकुमारी द्वारा वह लङ्का पहुँचा। उस समय राजधानी अनुराधपुर थी। वहाँ इसके लिए एक ख़ास मन्दिर बनाया गया। १३०० ई०में विजयी तमिल राजा इसे फिर भारत ले गया। इसे प्रतापी राजा पराक्रमबाहु, तृतीय (१२-९८-१३०३) द्रविड़ विजयके बाद फिर लङ्कामें लाया। इस समय राजधानी पोलन्नारुवमें पुलस्त्यनगर थी, वहाँपर भी इसके लिए पत्थरका सुन्दर मन्दिर बनाया गया। आज भी वह छोटा-सा सुन्दर अपनी टूटी-फूटी अवस्थामें दिखाई पड़ता है। किन्हीं-

किन्हीं लेखोंमें कहा गया है, कि १५६० ई०के क़रीब वह पोर्तुगीज़ी लोगोंके हाथमें आया; और वह उसे गोआ ले गये। पेगूके ब्रह्मा राजाने उसके बदलेमें बहुत धन देना चाहा; किन्तु गोआके धर्मान्ध पादरीकी आज्ञासे वह जला डाला गया, और उसकी भस्म पोर्तुगीज़ गवर्नरके सामने समुद्रमें फेंक दी गई। कहते हैं, १५६६के क़रीब विक्रमबाहु चतुर्थने उसकी जगह वर्तमान दाँतको बनाकर प्रसिद्ध किया। बौद्ध लेखों और परम्परासे पाया जाता है कि पोर्तुगीज़ोंको असली दाँत हाथ नहीं लगा था। असली दाँत छिपाकर उन्हें नक़ली दिया गया था। मन्दिरके दक्षिण पश्चिम कोनेपर अठकोनी बारहदरी है, जहाँ पहले राजा बैठ कर लोगोंको दर्शन देते थे, आजकल इसमें हस्तलिखित ताल-पत्रकी पुस्तकोंका एक अच्छा सङ्ग्रह है।

दन्तधातुका दर्शन बहुत ही कम होता है। सालमें एक ही बार इसका दर्शन होता है। मन्दिरकी सीमासे बाहर दन्त-धातु नहीं लाई जाती।

काण्डीका प्रधान महोत्सव 'एसल-पेरिहेरा' अथवा 'एसल केलिया' (आषाढ़-क्रीड़ा) है। यहाँका चान्द्रमास हमारे चान्द्र-माससे १५ दिन पश्चात् अमावस्याके बाद आरम्भ होता है। आषाढ़ोत्सव यहाँके आषाढ़ मासके अन्तसे श्रावण मास भर होता है। भगवान् बुद्ध-सम्बन्धी कुछ पवित्र वस्तुएँ मन्दिरके बड़े हाथीपर सुनहले हौदेपर रक्खी जाती हैं। जिसके आगे बौद्ध-

धर्म, यूनियन जैक और लङ्काके झंडे हाथियोंपर होते हैं। सबसे पहला हाथी गजनायक निलमेका होता है, उसके बाद झंडेवाले हाथी। प्रधान हाथीके आस-पास दो और हाथी चँवरवाले होते हैं। आगे वस्त्र बिछाया जाता है। पवित्र धातुके पीछे नाचनेवाले बाजे-गाजेके साथ होते हैं। पीछे 'दिव निलमी' देवालय-प्रबंधक प्रमुख पुरुष अपने पुराने सुनहले मुकुट और वेशभूषामें पैदल चलता है, उसके पीछे और बहुतसे आदमी कमरसे ऊपर नङ्गे, पुरानी टोपी दिये हुए चलते हैं। उसके बाद 'नाथ' देवालयका हाथी रङ्ग-बिरङ्गकी बिजलीसे सजे सुनहले हौदेपर देवालयका धनुष लेकर चलता है। उसका 'वसनायक निलमी' मन्दिरका प्रबन्धक अपने अनुचरोंके साथ उसी ठाट-बाटसे चलता है। इसी प्रकार विष्णु देवालय, 'कन्दर गमुव' स्कन्दस्वामी पट्टिनी देवी-देवालयोंके भी सजे हुए हाथी, धनुष लिये हुए, वस-नायकों और उनके अनुचरोंके साथ चलते हैं। अन्तिम पाँच दिनोंका उत्सव 'रन-दोली-बेमा' कहा जाता है। इसमें सबसे पीछे चार ढँकी हुई डोलियोंमें भिन्न-भिन्न देवियोंके आभूषण तथा पवित्र वस्तुएँ चलती हैं। शुरूसे आख़िर तक नारियलके खोपड़ोंकी जलती मशालें होती हैं। बाजे मुख्यतः ढोल, झाल, डमरू, रोशन-चौकीके होते हैं। स्कन्दस्वामीके मन्दिरके बाजेवाले तामिल होते हैं। उनकी आवाज़ और सुर अच्छा होता है। नाचनेवाले नाना प्रकारके पुराने ढङ्गके आभूषणों—सोनेके कङ्कण, केयूर, हारसे सुसज्जित होते हैं। स्त्री-पुरुषके रूपमें, कभी साहिबके रूपमें, तीन

हाथ ऊँची लकड़ियोंपर बड़ी मौजसे चलते हुए, नट अनेक हँसानेवाली चेष्टायें करते हुए लोगोंके लिए बड़े मनोरञ्जक होते हैं।

पहले इस उत्सवमें केवल चारों देवालयोंके ही जलूस सम्मिलित होते थे। महाराज कीर्ति श्री राजसिंहके (१७४७-१७८०) समय, जब भिक्षुसङ्घकी स्थापनाके लिए श्यामदेशसे प्रधान प्रधान भिक्षु आये थे, उसी समयसे भगवान् बुद्धकी पवित्र वस्तुएँ भी इसमें निकाली जाने लगीं। दन्तधातु उत्सवोंमें भी बाहर नहीं निकाली जाती। अन्तिम दिन चारों देवालयोंके कपुराल (पुजारी) रातके दो बजे से ही जलूसके साथ काण्डी से ४ मील दूर 'गन्नुरुव' गाँव में, महावली गङ्गाके तटपर पहुँचते हैं, जहाँ सूर्योदयके समय ही अलङ्कृत नावपर चढ़ देवालयकी सोनेकी तलवार और सोनेके कलशको लेकर गङ्गामें जा सूर्यकी लालीके साथ जलमें तलवार मारते हैं। उसी समय दूसरे परिचारक पिछले सालके जलको गिराकर नया जल भर लेते हैं। इसके बाद जलूस उसी तैयारीके साथ लौट आता है।

प्रधान द्वारमें घुसकर बाईं ओरका रास्ता पुरानी राज-कचहरीकी दीवानआम ओर जाता है। सिहंलभाषामें इसे 'मगुल मडुव' मंगल-मण्डल कहते हैं। यह लकड़ीकी खुली बारहदरी, 'हल्मील्ल' काष्ठके विशाल खम्भोंपर खपड़ैलसे छाई हुई है। आजकल सालके कुछ भागोंमें यहाँ सुप्रीमकोर्टका

कायडोका सर्दार

मछुओंकी डोंगी
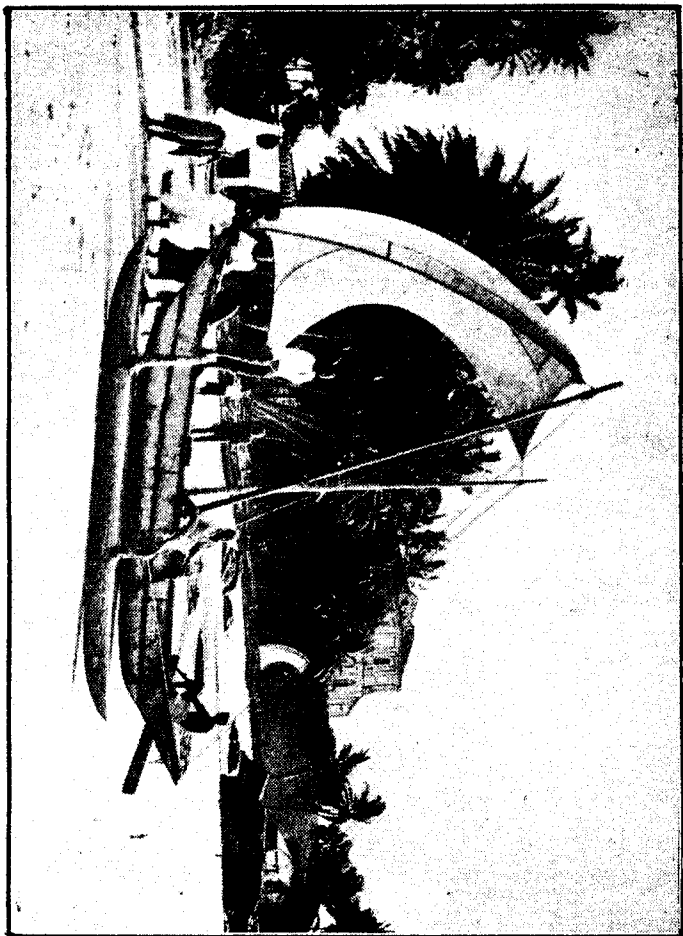
इजलास हुआ करता है। यह मण्डप तत्कालीन काष्ठ-शिल्पका एक दर्शनीय नमूना है। कारीगरीपर द्रविड़ शिल्पकी गहरी छाप है। काण्डीसे ३० मील उत्तर नालन्दाके पासके जङ्गलोंसे दुर्गम पहाड़ी 'पासों' को पारकर यह लकड़ी यहाँ लाई गई थी। पुराने समयमें मङ्गल मण्डपके बीचका भाग ऊँचा था, आजकल सारा ही फ़र्श एक-सा है। १७८३ ई०में राजा राजाधिराजसिंहने इसे बनवाना आरम्भ किया था। आजकल जहाँ उत्तर ओर सुप्रीमकोर्टका इजलास है, वहीं राजसिंहासन था।

'मङ्गल मण्डप' के उत्तर-पश्चिम 'महावासल' राजप्रासाद है, जिसमें आजकल काण्डी-प्रान्तका एजंट 'कमिश्नर' रहता है। मङ्गल मण्डपके उत्तर तरफ़ ज़िला कचहरी है, जो पुराने नमूनेपर बनाई गई है। पूर्व तरफ़ गवर्नमेंट एजंटकी कचहरी है, जो १८९० में बनाई गई थी। अपने आस-पासकी इमारतोंसे यह बिलकुल ही निराली, चूने ईंटकी, इमारत है। कचहरीसे दक्षिण काण्डी-आर्ट-म्यूज़ियम कला सङ्ग्रहालय है। पहले यह 'मेदवहल' के नामसे प्रसिद्ध था, जहाँ राजाके सम्बन्धी रहा करते थे। इसके एक भागमें जो 'पल्लेवहल' कहा जाता था, रनिवास था।

म्यूज़ियम शनिवारको दिनमें १० से ४॥ साढ़े चार बजे तक खुला रहता है। बहुत-सी उत्तम-उत्तम प्राचीन वस्तुओंके अतिरिक्त, इसमें आजकलके पीतल, चांदी, तांबेके नाना प्रकारके बर्तन, गोटेका काम, हाथीदांतकी नक्काशी तथा काठकी कारी-

गरीके नमूनोंका भी यहाँ अच्छा सङ्ग्रह है। म्यूजियमके नीचे 'अष्टवंक वीदिय' या 'कुमरूप्प वीदिय' है, जिसे आजकल मलावार स्ट्रीट कहते हैं।

'दलद मलिगव' के सामने झीलमें एक छोटा-सा टापू है। अन्तिम राजाके समयमें इसीपर 'जलतिलक मण्डप' था, जिसपर पहुँचनेके पहले काठका खुला पुल था। आजकल यह जगह खाली पड़ी है। दन्तमन्दिरके दलद मालिगव पश्चिम तरफ़ सड़ककी दूसरी ओर 'नाथ देवालय' है, जिसके हातेके भीतर पवित्र पीपलका वृक्ष है, जो अनुराधपुरके उस महाबोधिवृक्षसे लाकर लगाया गया है, जिसे सम्राट् अशोककी पुत्रीभिक्षुणी सङ्घमित्रा बुद्धगयाके बोधिवृक्षसे लाई थीं। नाथ-देवालयके उत्तर तरफ़ सड़ककी दूसरी तरफ़ 'महादेवालय' विष्णुका। मन्दिर है। इसे इतना पवित्र मानते हैं कि पुजारीके सिवा दूसरेको देव-दर्शन भी नहीं मिलता। यहां पश्चिम तरफ़ कुछ दूर दूसरी सड़क-पर 'कतरगमुव' (कार्तिकेय या स्कन्द) देवालय है। चौथा प्रधान 'देवालय' 'पट्टिनी' देवीका है।

काण्डी नगर यद्यपि समय-समयपर अनेक बार पोर्तुगीज़, डच और अँगरेज़ों द्वारा जलाया गया, तो भी १८१५ तक इसने अपनी स्वतन्त्रता कायम रक्खी। आपसकी फूटसे लङ्कावालोंने पोर्तुगीज़ोंको बुलाया। पोर्तुगीज़ोंके मुक़ाबलेके लिए काण्डीके राजाओंने डचोंको बुलाया, जिसका परिणाम उन्होंने बड़ा ही

क़ ड़ुआ पाया। पीछे डचोंको हटानेके लिए उन्होंने अँगरेज़ोंको निमन्त्रण दिया। १७९६ और १७९७ में अँगरेज़ोंने डच लोगोंके हाथसे समुद्र-तटके प्रदेशोंको छीन लिया। जनवरी १८०३ ई० में अँगरेज़ोंने काण्डीवालोंके साथ पुनः युद्ध-घोषणा कर दी। काण्डीको दख़ल कर वहाँ अँगरेज़ोंने अपनी एक छोटी-सी फ़ौज रक्खी, लेकिन थोड़े ही दिनोंमें ज्वर और बीमारीसे यह इतनी निर्बल हो गई, कि काण्डीवालोंने उसे पराजितकर फिर अपना अधिकार जमा लिया। मेजर डेवी क़ैद होकर १८१२ तक काण्डीमें रहकर वहीं मरे। १८०५ के बाद कुछ दिनोंके लिए शान्ति रही। १८१५ में अँगरेज़ोंने फिर युद्ध छेड़ा। अब की बार राजा श्रीविक्रमराजसिंह गिरफ़्तार कर लिये गये। वे क़ैद करके एल्लोर (मद्रास) भेज दिये गये।

काण्डी प्रदेशवाले पहाड़ी लोग सबसे पीछे तक स्वतन्त्र रहे। उन्होंने अपनी पोशाक, नाम, रहन-सहनको अपनी पुरानी सभ्यताके अनुसार रक्खा। यही कारण है जो काण्डीवाले लोग नीचेवाले समुद्र-तटके लोगोंको—जिन्होंने क्रिश्चियन नाम और वेषको स्त्रियों तकमें बहुत अधिकतासे जारी करा दिया है—सम्मानकी दृष्टिसे नहीं देखते। काण्डी-प्रदेशमें स्त्रियोंकी पोशाक वही पुरानी साड़ी है। वह केशको दो तरफ़ फाड़ कर रखती हैं, नीचेवालोंकी तरह बिना फाड़े हुए नहीं। काण्डीके लोगोंमें दो जातियाँ ऊँची समझी जाती हैं, 'रदल' और 'गोवी'। 'रदल' पुराने राजाओं तथा राजामात्योंके वंशज हैं। 'रदल' का शब्दार्थ

'राजलोहित' है जो राज-पुत्र शब्द-सा-ही है। इनकी संख्या १,००० से बहुत अधिक नहीं होगी। ये लोग विवाह आपस ही-में करते हैं, दूसरी जातिकी कन्या न लेते हैं न देते हैं। ये लोग अब भी अच्छी भू-सम्पत्ति रखते हैं। गोवी लोग वैश्य हैं। इनकी संख्या लाखों है। गोवी जाति नीचे भी बसती है, परन्तु विदेशियोंके संस्कारमें अत्यन्त बढ़े हुए इन गोवियोंको ऊपरी गोवी तुच्छ निगाहसे देखते हैं और उनसे विवाह आदि सम्बन्ध रखना बुरा मानते हैं।

[४]

कोलम्बो की सैर

जिस तरह अँगरेजी-राज्य स्थापित होनेसे पहले कलकत्ता कुछ भी नहीं था, विदेशी शासनसे पहले कोलम्बोकी भी वही दशा थी, पर आज-कल कोलम्बो केवल लङ्काके ही लिए नहीं, समस्त संसारके लिए एक विशेष स्थान रखता है। १४ वीं शताब्दीके तृतीयांशमें जब कि विक्रमबाहु तृतीय (१३५७-१३७४ ई०) गम्पोलासे लङ्कापर शासन कर रहा था, उसके प्रधान मंत्री अलकेश्वरने अलगक्कोनार-तामिल वर्तमान कोलम्बोसे ६ मीलपर जयवर्द्धनपुर बसाया। जयवर्द्धनपुर तबसे अब तक कोट्टेके ही नामसे प्रसिद्ध है। लङ्काको जिस समय पाश्चात्य जातियोंसे साम्मुख्य करना पड़ा था, उस समय यही राजधानी था। १५ नवम्बर १५०५ ई०को सर्वप्रथम दोम्-लोरेन्सों द-अल्मेदा प्रथम पोर्तगीज़ कोलम्बो पहुँचा; और तभीसे इस अप्रसिद्ध कोलम्बोका भाग्योदय होने लगा। पोर्तगीजोंने कोलम्बो-निवा-

सियों पर बड़ा प्रभाव डाला। सिंहल-इतिहास 'राजावलिय'के अनुसार उनके विषयमें राजाको इस प्रकारकी सूचनादी गई थी—"हमारे कोलम्बोके बन्दरमें एक जातिके लोग हैं, जो रंगमें सफ़ेद हैं। ये लोहेके जामा और लोहेकी ही टोपी पहनते हैं। ये एक क्षण भी एक स्थान पर नहीं खड़े होते; सर्वदा इधर-उधर घूमते रहते हैं; ये पत्थरके ढेले खाते हैं, और रक्त पीते हैं; ये एक मछली या लेमूके लिए दो तीन अशर्फ़ियाँ दे देते हैं। युग-धर पर्वतपर बिजलीके गिरनेसे उतनी आवाज़ नहीं होती जितनी इनकी तोपोंकी होती है। इनके तोपका गोला कोसों तक पहुँचता है; और पत्थरके क़िलेको भी छिन्न-भिन्न कर देता है।" पोर्तगीज़ राजदूत ख़ूब घुमाफिराकर तीन दिनमें दर्बारमें पहुँचाया गया। यद्यपि कोट्टे कोलम्बोसे ६ ही मील है। उस समय मुसलमान व्यापारियोंने बहुत कोशिश की कि लोरेन्सो सफल-मनोरथ न हो; क्योंकि उस समय लङ्काका साराही व्यापार इन्हीं मुसलमानोंके हाथमें था। (ये 'मूर' कहे जाते हैं)। परन्तु लोरेन्सो का अभीष्ट सिद्ध हुआ। राजा वीरपराक्रमबाहु अष्टमने पोर्तगालकी संरक्षता स्वीकार की; और बदलेमें दारचीनीकी भेंट प्रदानकी।

थोड़ेही दिनों बाद पोर्तगीज़ोंने कोलम्बोमें अपना क़िला बनाया। १५२४ में पोर्तगाल-नरेशके आज्ञानुसार यद्यपि यह किला तोड़ दिया गया; तोभी कोलंबोकी उन्नति होती ही गई। १६४४ ई० तक कोलंबोपर पोर्तगीज़ोंका झंडा फहराता रहा; इसके बाद

यह हालेंडवालोंके हाथमें आया। अन्तमें १५ फ़रवरी १७९६ में डचोंसे अँगरेज़ोंने छीन लिया। इस प्रकार कोलंबो छोटेसे मछुओं के गाँवसे बढ़कर आज प्रायः ढाई लाख आबादीका एक आधुनिक नगर बन गया। जिन तीन पाश्चात्य जातियोंका प्रभुत्व कोलंबो पर रहा; उन्होंने अपने अनेक चिह्न छोड़े हैं। पोर्तगीज़ोंका सबसे बड़ा चिह्न उनके द्वारा बनाये गये लाखों रोमन कैथलिक ईसाई हैं। ये लोग बलपूर्वक ईसाई बनाये गये थे। कोलंबोमें इनकी यथेष्ट संख्या है। डचोंकी बनाई हुई कितनी ही इमारतें अब भी मौजूद हैं।

भारतसे यहाँ आनेके दो रास्ते हैं, एक तो धनुषकोडीसे रामेश्वरम् जहाज़पर बैठकर दो घंटेमें मन्नारकी खाड़ी पार हो, रेल-द्वारा १२ घंटेमें कोलंबो पहुँच सकते हैं। अथवा बम्बईसे जहाज़में बैठकर कोलंबो आ सकते हैं। अधिकतर भारतीय पहलेही रास्तेसे आते हैं। भारतमें आने-जानेका कोलंबोका सबसे बड़ा स्टेशन मर्दाना पहले मिलता है। पर हमारे यात्रीको यहाँ न उतरकर एक स्टेशन और आगे फ़ोर्ट स्टेशन पर जाना होगा। स्टेशन से बाहर आपको घोड़ागाड़ी या इक्के नहीं मिलेंगे; हाँ रिक्शा और मोटरें आप चाहे जितनी ले लें। यदि आप अँगरेज़ी जानते हैं तो भाषाकी कठिनाई आपको बिलकुल नहीं होगी लेकिन एक बातके लिए आपको सावधान रहना चाहिए; आप किसीको 'कुली' न कहें। रेलवे-कुलीको 'पोर्टर' कहकर आप बुला सकते हैं। यों तो आप उसकी पोशाकसे और अँगरेज़ीमें बात चीत

करनेसे 'कुली' कहनेकी हिम्मत न करेंगे; तो भी आपको ख़बर-दार कर देना आवश्यक है; क्योंकि 'कुली' शब्द उनके लिए बहुत असह्य है। यह उन भारतीयोंके ही लिए व्यवहृत होता है, जो यहाँके चाय और रबरके बगीचोंमें काम करनेके लिए लाखोंकी संख्यामें आते हैं।

स्टेशनसे यदि आप पसंद करें, तो किरायापर मोटर कर सकते हैं; किन्तु हमारे कुछ उत्तर भारतीय मित्रोंकी सम्मति तो यही थी, कि यहाँ एक ही चीज़ सस्ती है और वह है रिक्शा। भूमध्यरेखाके सिर्फ़ ६ अंश दूरपर के इस स्थानमें १२ बजेकी धूप में नंगे पैर रिक्शा लिये भागते हुए, इन आदमियोंको देख कर आप अवश्य गोस्वामीजीकी कोई चौपाई, सो भी लंका-कांड की, कहे बिना न रहेंगे। स्टेशनसे सबसे पहले आपको यहाँकी चौरंगी या ठंढी सड़ककी ओर चलना चाहिए। इसे फ़ोर्ट कहते हैं। फ़ोर्ट स्टेशनसे बहुत दूर नहीं है। इच्छा हो तो स्टेशनके सामनेवाली ट्रामसे आप दो मिनटमें पहुँच सकते हैं। थोड़ी ही दूरपर चहारदिवारियोंसे घिरी कुछ बारकें मिलेंगी; यही 'चामर्स ग्रेनरी' है। लंकामें चावलका सबसे बड़ा ज़ख़ीरा यही है। आपको मालूम होना चाहिए कि इँगलेंडकी भाँति लंका भी शायद तीन माससे अधिकके लिए अनाज नहीं पैदा करता। यहाँकी पैदावार है चाय, रबर और नारियल। इससे आप चामर्सके अन्न-भण्डारका महत्त्व समझेंगे। चावलका व्यापार अधिकतर मद्रासी हिन्दू चेट्टियोंके ही हाथमें है। यहाँसे कुछ आगे चलने

लड़कियाँ कपड़ोंपर बेल-बूटे बना रही हैं
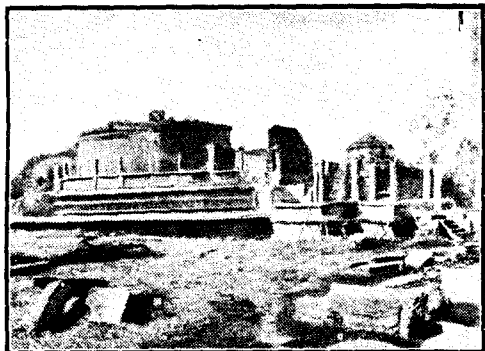
(पोलन्नारुव) 'वट-दा-गे' (उत्तर-पूर्वसे)
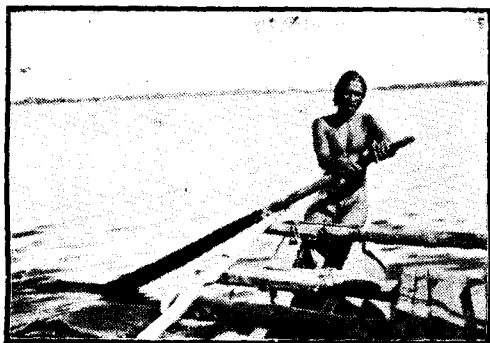
सिंहली बजरा

पर चैारंगी आरम्भ हो जायगी। दोनों तरफ़ विशाल भवन हैं; जिनमें बड़ी बड़ी अँगरेज़ी कम्पनियोंकी दूकानें हैं। कहीं कहीं, कोई कोई भारतीय व्यापारी भी मिलेंगे। इन भारतीय व्यापारियोंमें अधिकतर गुजराती खोजे और बोहरे मुलतानी मुसलमान हैं। ये जवाहिरात और रेशम आदिका व्यापार करते हैं।

आप इसी सड़कसे कुछ ही मिनटोंमें कोलंबो बन्दरपर पहुँच जायँगे। कोलंबोका बन्दर स्वाभाविक बन्दर नहीं है। १८८२ ई० तक गाल लङ्काका सबसे बड़ा बन्दर था। सहस्राब्दियोंसे अरब, ईरान, चीन, जावाके व्यापारी यहीं आकर मिलते थे। १८८२के बाद करोड़ों रुपये लगाकर कोलंबोका बड़ा बन्दर तैयार किया गया, और उसके साथही लक्ष्मी देवी भी गालसे हट गई। इसमें विशालकाय पचासों जहाज़ अपना अपना लंगर डाले खड़े रहते हैं। दिनको कभी दरियाई घोड़ोंकी लहरों परकी दौड़ और कभी उनका आकाशमें उड़ना देखनेके लिए कितनेही लोग आपको एकत्रित मिलेंगे। रातके समय तो बिजलीकी रोशनीसे चारों ओर—स्थल-जल जगमगा उठता है। यदि आप चाहें, तो आठ आना पैसा फेंक कर, छोटी मोटरनावपर चढ़ सकते हैं; दो घंटे में वह आपको सारे बन्दरकी सैर करा देगी। यदि फ्रेंच, अंगरेज़ी, अमेरिकन, जर्मन, जापानी किसी जहाज़के देखनेकी इच्छा हो तो वह भी मुश्किल नहीं; ज़रूरत सिर्फ़ रुपयेकी है।

बन्दरगाहसे निकलने पर अब दाहिनी ओरकी सड़क पर

हो जाना चाहिए। दो मिनटों में अब आप उस सड़क पर पहुँच गये, जो यहाँकी सबसे पवित्र सड़क है। यहाँ बड़े डाकघरके सामने बग़ीचेका दरवाज़ा-सा दिखलाई पड़ेगा; जिसके दरवाज़ेपर ज्येष्ठ-बैशाखकी धूपमें, काली ऊनी कोट पहने हुए पुलिसमैन खड़ा है। पुलिसमैनही क्यों; आपको बारह बजे दिनमें कितनेही सिंहाली साहब भी, गर्म ऊनी लबादेदार कोट पहने मिलेंगे; आखिर उन बेचारोंके लिए यदि प्रकृतिने जाड़ा नहीं दिया तो क्या वे ऊनी कपड़ोंके पहननेका शौक़ ही न पूरा करें? यही क्या, आपमें से कितनोंको तो उस कड़ाकेकी गर्मीमें इन साहबोंको उबलती चाय और काफ़ी पीते भी देखकर असह्य मालूम होगा। लेकिन आपको समझना चाहिए कि कितनीही बातोंमें लंका और उसकी राजधानी भारतसे सदियों आगे बढ़ आई है।

यही बग़ीचेवाला घर 'क्वीन्स हौस' महारानीका घर कहा जाता है; क्योंकि यह उस समय बना था, जब महारानी विक्टोरिया राज्य-शासन करती थीं। यही 'वाइसीगल लाज' है, जिसमें सीलोनके गवर्नर रहते हैं। चुपचाप आफ़िसोंको देखते, ज़रा इस बस्तीको पार कर जाइए; अब आप फिर समुद्रके तटपर पहुँच गये। बाईं ओर कौंसिलहाल और सेक्रेटरियट की इमारतें हैं। कुछ क़दम आगे बढ़नेपर नहर पार कर आप एक हरे-भरे मैदानमें पहुँचेंगे। यदि सायंकालका समय है; सूर्य हो या न हो, पर उसका विष बुझ चुका हो; तो विशाल नीले समुद्रकी लहरोंपरसे आनेवाली हवा एक बार आपके तीनों ही ताप भुलवा देगी, शारी-

रिक तापकी तो बात ही क्या ? यदि कहीं कराल-कालके चक्रसुद-
र्शनसे आर्त, सहस्रांशुको सागरके अनन्त गर्भमें लीन होनेका
अवसर आगया हो; तब तो कहना ही क्या है। नीचे आपके पैरों
से आकाशके छोर तक, सारा समुद्र लाल होजाता है। उसकी
अनन्त छींटें आकाशको भी लाल कर देती हैं। समुद्रके तटपर
पड़ी कुर्सियोंपर ज़रा बैठ जाइए; देखिये, लहरें कैसे एक दूसरे
पर चढ़ाई करती आपके पैरोंके नीचे तक आजाती हैं। इस नहर
से प्रायः ½ मील भर फैला हुआ यह मैदान, कोलम्बोंका सबसे
रमणीय स्थान है; यद्यपि हरी घासके फ़र्श, मामूली बेंचें और
किनारेपर बँधे पत्थरोंके बाँधके अतिरिक्त, मनुष्यने इसके शृंगार
के लिए कोई साधन नहीं प्रस्तुत किया है; तो भी यह बहुत ही
रमणीय है।

यहाँसे सामने गहरी रामरज मिट्टीमें रँगा हुआ प्रासाद दि-
खाई दे रहा है; इसे आप रामरजमें रँगा हुआ समझकर तापसोंकी
कुटिया न समझें। यह है 'गालफेस होटल' फ्रेंचमें 'होतेल-
दिल्युस्'। यह है पेरिस का (परी) टुकड़ा। इसके हातेमें सैकड़ों
मोटरें देखकर आपको घुड़दौड़का मैदान याद आने लगेगा।
समुद्रके तट पर बाहरसे भोली-भाली-सी मालूम होनेवाली यह
इमारत अन्दरसे वैसी भोली नहीं है। जीवनके आनन्दको लूटनेके
लिए, कितनेही कोलम्बो-वासी सिंहाली साहब इसमें ही वास
करते हैं। भीतरकी स्वच्छता, सौन्दर्य, सनियमता के लिए क्या
कहना है ? यहाँ आवश्यकता है, रुपये और हृदयहीन हृदय की।

यहाँ से दक्षिण दिशाकी सड़क, पचासों मील तक समुद्रके किनारे किनारे चली गई है। इसीपर कोलम्बोसे ६ मीलपर, समुद्र-तट पर दूसरा सुन्दर 'मैंट लेवनिया होटल' है। यह अपने सामुद्रिक स्नानके लिए विशेष प्रसिद्ध है।

होटलोंकी सैरके बाद अब आप कोलम्बोंके बड़े बाजारमें चलिए, यह पेट्टा कहा जाता है। सड़क पतली है, इसमें ट्रामकी दुहरी लाइनें भी हैं। भीड़ यहाँ भी बड़े बाजारकी ही तरह है। मारवाड़ियोंकी जगह, यहाँ गुजराती बोहरों और खोजोंने ले रक्खी है। इन गुजराती मुसलमानोंमें कितने ही करोड़पति हैं। अभी फ़ोर्ट में एक बड़े मार्केकी ज़मीन, एक बोहरे सेठने दस लाखसे ऊपरपर ख़रीदी है, अब वह उसपर १५ लाख और ख़र्च करने जारहा है। उससे पहलेहीसे 'ग़फ़ूर बिल्डिंग'की शानदार इमारत फ़ोर्टमें बन्दरके पास खड़ी है; यह कोलम्बोंकी सर्वोत्तम इमारतोंमें है। पेट्टामें गुजराती मुसलमान व्यापारियोंका अकण्टक राज्य समझिए; बीचमें मामूली दूकानें सिंहालियों या दूसरोंकी भी टिमटिमा रही हैं; किन्तु उनका कहाँ मुकाबिला ? कहीं कहीं दो-चार दूकानें सिन्धी और मुल्तानी हिन्दुओंकी भी हैं। ये लोग अधिकतर रेशम आदिका व्यापार करते हैं। मारवाड़ीका पता तक नहीं है। शायद बेचारे खारे पानीसे बहुत डरते हैं। लेकिन अब तो शायद धर्मके गलनेका डर नहीं होना चाहिए। मारवाड़ी ऐसी व्यापार-कुशलता यहाँ किसी जातिमें नहीं है, सबसे विशेषता मारवाड़ी-जातिकी कलम-लगाई है। जो मारवाड़ी बच्चा मुनीमी

करनेके लिए भी, अभी ताजा मारवाड़की प्यासी भूमिसे आया है; वह भी चाहता है, कब वह अपना स्वतन्त्र कारोबार करेगा। उसकी यह धुन खुद उसके मालिकों को भी कितने ही बार कार-बारमें पत्ती देनेका प्रलोभन देनेके लिए मजबूर करती है। अन्त में दस-पन्द्रह वर्षके बाद वह मुनीम खुद सेठ बन जाता है और इस प्रकार कलमसे कलम लगनेकी बात जारी रहती है। यहगुण यहाँकी किसी व्यापारिक जातिमें नहीं है। ऐसी अवस्थामें मैं कह सकता हूँ, कि यदि मारवाड़ियोंका खारे पानीका डर मिट जाय; और वे रामेश्वरसे १४ घंटेके रास्तेपर और आजायँ, तो यहाँ उनके लिए बड़ा भारी मैदान है।

पेट्टाकी सैरके बाद जरा पासकी 'सी स्ट्रीट'में चले चलें; यह मद्रासी चेट्टियोंका मुहल्ला है। जान पड़ता है, कितनेही मन्दिर तंजोर और कुम्भकोणसे लाकर रख दिये गये हैं। छोटी छोटी कोठरियोंमें नग्न कृष्णकाय चेट्टी अपने मुनीमों-सहित बैठे हुए हैं। सारे सीलोनके चावलका और लेन-देनका सारा कारबार इन्हींके हाथमें है। घंटोंके अन्दर लाखों रुपये निकालकर दे देना इनके बायें हाथका खेल है। ये सभी चेट्टी मद्रासी हैं; जाफनाके नहीं। सीलोनके उत्तरी भागमें भी सोलह आने तामिल भाषा-भाषी ही बसते हैं; लेकिन ये लोग जाफना-तामिल कहे जाते हैं; और मद्रासियोंकी तरह व्यापार और कुलीगीरीकी अपेक्षा, क्लर्की अधिक पसंद करते हैं। इसी सड़कपर सर रामनाथन्का मन्दिर बन रहा है। चिदम्बरम् और मदुराके नमूनेके पत्थरके मण्डप

बन रहे हैं; लाखों रुपये व्यय हो रहे हैं; पर सर साहबको, इन पत्थरके मकानोंके खड़े करनेकी जितनी भक्ति है, उतनी उन अपने सह-धर्मियोंके लिए नहीं, जो हज़ारोंकी संख्यामें हर साल ईसाई बनते जा रहे हैं। शायद उन्हें मन्दिरवालोंकी अपेक्षा मन्दिरका अस्तित्व अधिक वाञ्छनीय है। इसका यह मतलब नहीं, कि सर रामनाथन् लोकोपकारक कार्योंसे अलग रहते हैं। वे जाफनामें अपने धनसे लड़कों और लड़कियोंके दो कालेज चला रहे हैं। अमेरिकन रमणीसे विवाह करने पर भी, वे पक्के हिन्दू हैं।

अब हमें पेट्टाकी सीमा छोड़कर एक दूसरे भागमें चलना है. जिसमें रायल कालेज, जादूघर, घुड़दौड़, टाऊन हाल और सिनामोनगार्डन मुहल्ला है। रायल कालेज लंदन-यूनिवर्सिटीसे सम्बद्ध सरकारी कालेज है; उसको अब यूनिवर्सिटी-कालेज कहते हैं। सीलोनमें अपना विश्वविद्यालय न होनेसे, यहाँ सभी कालेज लंदन-यूनिवर्सिटीकी ही परीक्षा दिलाते हैं। इनमें सिर्फ यही यूनिवर्सिटी कालेज है, जहाँ बी० ए० तककी पढ़ाई होती है। मैट्रिक तककी पढ़ाईवाले स्कूल भी यहाँ कालेज ही कहे जाते जाते हैं। आगे चलकर अब हम 'सिनामोनगार्डन' दारचीनीके बगीचे में प्रवेश करते हैं; लेकिन अब यह दारचीनीका बगीचा नहीं है; पहले, पोर्तुगीज़ों और डचोंके कालमें था। अब तो यह कोलम्बोके धन-कुबेरोंके बँगलोंसे सुशोभित है। इसीमें 'टाऊन हाल' है। यह सीलोन की सर्वोत्तम इमारतोंमें है। अभी हालहीमें तयार

हुआ है; टाऊन हालके सामने विक्टोरिया पार्क है। बगीचेकी कोई उतनी विशेषता नहीं है। इससे टेनिस खेलनेके कई क्षेत्र हैं। उसके बाद आपको जादूघर दिखलाई पड़ेगा। सभी जादूघरोंकी तरह यहाँभी मूर्तियाँ, शिलालेख, मुर्दे जानवर रक्खे हुए हैं। विशेषता है, एक सङ्गमरमरकेसे पत्थरसे बने लङ्काके चित्रकी, जिसमें पहाड़ोंकी ऊँचाइयाँ और दूरियाँ, बड़ी अच्छी तरह दिखलाई गई हैं। म्यूज़ियमकेही एक कोनेमें पुस्तकालय है। पुस्तकालय लङ्काके योग्य नहीं है। इसीमें सीलोन-शाखा एसियाटिक सोसाइटीका पुस्तकालय भी शामिल है। तोभी मुझे तो बहुधा बड़ा निराश होना पड़ता था। मालूम होता है, सीलोनके लोग अँगरेज़ी भाषा पर जितना ध्यान देते हैं, उतना साहित्यपर नहीं। म्यूज़ियमके पास एक दूसरी पब्लिक लायब्रेरी भी है।

म्यूज़ियमसे अब मर्दाना स्टेशनको चलना चाहिए; टाऊन हालसे थोड़ीही दूर आगे मसजिद मिलेगी। मर्दाना स्टेशनके पास एक और भी मसजिद है। इसका आहाता बहुत लम्बा-चौड़ा है। मर्दानाके चारों ओरकी बस्ती ख़ूब घनी है। स्टेशनके बाहर मदन-कम्पनीका सिनेमा है। कोलम्बोमें मदन-कम्पनीके तीन सिनेमाघर हैं। मर्दानाकी पूर्व जानेवाली सड़कपर यहाँका सबसे बड़ा बौद्ध-कालेज आनन्द-कालेज है, पढ़ाई लन्दनके एफ० ए० तक है। ईंट-चूनेपर इन लोगोंने भी लाखों रुपये क़र्ज़ कर लिये हैं। अन्य बौद्ध-शिक्षा-संस्थाओंमें नालन्दा कालेज, महबोधी कालेज, और कन्याओंका 'विशाखा कालेज' है। शिक्षामें लङ्का

भारतसे बहुत आगे हैं; इसलिए लङ्कावासी बौद्ध-बन्धुओंका इधर ध्यान आकृष्ट होना आवश्यक ही है, तोभी शिक्षाका बहुत-सा काम ईसाइयोंके हाथमेंही है, यद्यपि अब वे भी बौद्धोंकी जागृतिका अनुभव करने लगे हैं।

कोलम्बोकी उत्तरी सीमा केलनी कल्याणी गङ्गा है। इसीके किनारे कल्याणी-विहार है, जो लङ्काके सर्वोत्तम बौद्ध-तीर्थोंमें है। अमावस्या और पूर्णिमाके दिन आप यहाँ हज़ारों स्त्री-पुरुषोंको पायेंगे। अभी हालहीमें एक गृहस्थने बिजलीकी रोशनीके लिए इंजन लगवाया है, और दो लाख रुपये लगाकर मन्दिर बनवानेका काम आरम्भ कर दिया है। केलनी-विहारसे डेढ़मीलपर केलनिया स्टेशन है, जिसके पासही विद्यालङ्कार विद्यालय है। यह विद्यालय भिक्षुओंका है, जिसमें अधिकतर भिक्षुही पढ़ते हैं। इस तरहका एक विद्यालय कोलम्बोमेंभी है, जिसका नाम विद्योदय है। विद्योदय सबसे पुराना और विद्यार्थी-संख्यामें भी सबसे बड़ा भिक्षुविद्यालय है। लङ्काके बौद्ध भिक्षुओंका वर्णन मैं एक दूसरे लेखमें करना चाहता हूँ, इसलिए यहाँ लिखने की कोई आवश्यकता नहीं।

केलनिया स्टेशनसे हम एक मील पैदल चलकर कल्याणी गङ्गाके घाटपर पहुँच सकते हैं, और इसके उस पार ट्राम है। यह ट्राम १० सेंट प्रायः ६ पैसे में फ़ोर्ट पहुँचा देगी। रास्तेमें पहले आपको सिंहाली शहरकी बस्ती देखनेका मौक़ा हाथ

लगेगा। कहीं-कहीं आपको सूखी मछलियोंकी गंध अवश्य बेचैन कर देगी, चाहे आप भले ही भारतवर्षसे ही मत्स्यावतारके प्रेमी हों; लेकिन यह तो सारे लङ्कामें साधारण बात है। कुछ दिनके अभ्यासपर शायद आप भी इसमें कन्नौजकी गलियोंकी-सी सुगन्ध मालूम करने लगें। ट्राम्बेके दोनों बगलमें सारी छोटी-छोटी दूकानें ही हैं। केला और चाय आप यहाँ अधिक देखेंगे। यह बात यहीं नहीं सारे सिंहलद्वीपमें है।

कोलम्बोकी सैरमें आपको कुछ विशेष बातें मालूम होंगी। एक तो कुछ भागोंको छोड़कर बाकी सभी जगह मकान एक तल्ले ही हैं। खास बाजारोंको छोड़कर; नारियलके वृक्ष तथा फूल-पत्ते आप हर जगह देखेंगे। चाहे कोई मास हो, हरियाली सदैव बनी रहती है; क्योंकि यहाँ वर्षा हर सप्ताह हो जाया करती है। मई तो वर्षाका मास ही ठहरा। मुसलमानोंको छोड़कर यहाँ पर्दा बिलकुल नहीं है; सिंहली स्त्रियाँ तो इस प्रकार कुर्ती पहनती हैं कि, आधा कन्धा ऊपरके खुला रहता है। शिर नङ्गा रहना तो उनके लिए धर्म-सा है।

एक जगह और चलिए। यह है 'हेवलाक टाऊनमें, इसि (ऋषि) पतनाराम'। बनारसके छः मील उत्तर सारनाथ है। उसीका यह पुराना नाम है। यहाँ एक छोटा-सा मन्दिर है, जो बड़े ही सुन्दर चित्रों और मूर्तियोंसे अलङ्कृत है। यद्यपि इसे बने हुए बहुत दिन नहीं हुए तो भी लोग इसको भी कोलम्बोकी

दर्शनीय चीजोंमें समझते हैं। १९१५ई० में लङ्कामें मार्शल्-लाकी घोषणा हुई थी; उसीमें यहाँके एक करोड़पतिका, तरुण-पुत्र बलिदान हुआ! उसीकी स्मृति-रक्षाके लिए, भगवान् बुद्धका यह मन्दिर, उसके धनाढ्य पिताने बनवाया है।

---

[५]

लंकाके लोग और भिक्षु

यहाँ मैं आवश्यक ज्ञातव्य बातोंको संक्षेपमें ही दे सकूँगा और वह सब नवीन लंका (सीलोन) के बारे में।

लंकाकी आकृति मोती या आमकी तरहकी है। यह उत्तर अक्षांश ५° ५५′ और ९° ५०′ तथा देशान्तर ७९° ४२′ और ८१° ५३′ के मध्यमें है। भूमध्य-रेखाके बहुत समीप होनेसे देश गर्म है और ऋतुभेद स्पष्ट नहीं मालूम होता। यद्यपि बीचकी पहाड़ी ऊँची जगह नुवर-एलिया आदिमें सर्दी पड़ती है तो भी पहाड़के नीचेकी समतल भूमि खूब गर्म है, जो समुद्रके पास भी बाज वक्त असह्य मालूम होती है। सीलोनकी अधिकतम लंबाई २७० मील और चौड़ाई १३७ मील, क्षेत्रफल २५,३३२ वर्गमील है, जो भारतका साठवाँ भाग है। १९२१ ईस्वीकी मर्दुमशुमारीमें सीलोनकी जन-संख्या ४४,९८,६०५ थी, जिसमें—

बौद्ध	२७,६६,८०५	६१·६ सैकड़ा
हिन्दू	९,८२,०७३	२१·८ ,,
मुसलमान	३,०२,५३२	६·७ ,,
ईसाई	४,४३,४००	९·९ ,,
अन्य	७९५	·२ ,,

जातिके विचारसे यही संख्या इस प्रकार है—

योरपीय	८,११८	·२
पुराने डच और यूरेशियन	२९,४३९	·७
सिंहल	३०,१६,१५४	६७·
तमिल	११,२०,०५९	२४·९
तमिल (भारतीय)	६,०२,७३५	१३·४)
मूर (मुसलमान)	२,८४,९६४	६·३
मलाई	१३,४०२	·३
वेद्दा (जंगली)	४,५१०	·१
अन्य	२१,९५९	·५

ढाई हजार वर्षसे पहले लंकामें जो लोग बसे थे उनकी शुद्ध सन्तान आज भी जंगलोंमें हैं। इनको 'वेद्दा' (व्याधा) कहते हैं। ये लोग शिकार और मधुपर गुजर करते हैं। एक छोटेसे कोपीनके अतिरिक्त इनके पास और कोई कपड़ा नहीं होता। सामानमें भी एक धनुष और एक कुल्हाड़ी, बस। ये खेती आदि नहीं करते और सभ्य आदमियोंसे दूर घोर जंगलोंमें रहते हैं। कहते हैं,

इन लोगोंको हँसना नहीं आता। ये मनुष्यजातिकी बहुत पुरानी अवस्थाके सजीव उदाहरण हैं, लेकिन ये लोग नर-मांस नहीं खाते।

वेदा लोगोंके पूर्वजोंको पराजित कर सिंहल लोग आबाद हुए हैं। इनकी सबसे अधिक संख्या है। प्रायः दो हजार वर्ष पूर्वसे मदरास-प्रान्तसे तामिल लोगोंका हमला शुरू होने लगा, और तामिल लोग बराबर लंकामें आते रहे। इनमेंसे ऊँची जातिवाले तो सिंहलोंमें मिल गये और बाकी जो पीछेसे आये वही सीलोनी तामिल हैं। इनकी संख्या पाँच लाख है। मूर लोग अरब सौदागरोंकी सन्तान हैं और मलाई लोग मलायासे डचोंके लाये हुए सैनिकोंकी सन्तान हैं। डचोंकी अपनी सन्तान आज कल बर्गर कही जाती है।

सिंहल लोगोंमें भी १०-११ जातियाँ हैं, जिनमें सबसे ऊँची तथा बहुसंख्यक गोवी जाति है। शिक्षा, धन तथा प्रभावमें ये लोग बहुत बढ़े-चढ़े हैं। किन्तु सीलोन और भारतके जाति-भेदमें बहुत अन्तर है। सीलोनमें धर्म बदलनेपर भी जाति नहीं टूटती। एक गोवी ईसाई होनेपर भी पक्का गोवी बना रहता है और कोई भी बौद्ध गोवी उसे लड़की देने-लेनेमें जरा भी आना-कानी नहीं करता। ऐसे दृश्य वहाँ बिलकुल साधारण हैं—पति बौद्ध है तो पत्नी ईसाई, माँ ईसाई है तो लड़के बौद्ध। धर्म-भेदसे उनके पारिवारिक जीवनमें कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता। जाति-

भेदके इस सिद्धान्तसे लंकाके बौद्ध नफे में ही रहे हैं। पोर्तुगीजोंने जबर्दस्ती ईसाई बनाना शुरू किया था। उस समय पानी पीते ही हमेशाके लिए ईसाईवाला सिद्धान्त यदि वे लोग मानते तो वहाँका प्रधान धर्म ईसाई ही हो गया था। किन्तु उनकी इस नीतिने फिर अपने धर्ममें लौट आनेका दरवाजा खुला रक्खा। बहुतसे धनी परिवार जो पोर्तुगीजोंके अत्याचारसे ईसाई हो गये थे, उलटकर बौद्ध हो गये और होते जा रहे हैं। १९२१ में पिछले दस वर्षमें जहाँ बौद्ध ११·९ सैकड़ा बढ़े थे, वहाँ ईसाई सिर्फ ८·४ बढ़े थे। और यह भी वृद्धि अधिकतर उन तामिल हिन्दुओंकी वजहसे है, जिनमें मदरासकी भाँति यहाँ भी ईसाइयोंका कार्य अधिक हो रहा है, तो भी सिंहल लोग अब इस जाति-भेदके दोषको अनुभव करने लगे हैं। हालके चुनावोंमें भारतकी तरह वहाँ भी जातिका सवाल उठा जा रहा है। लोगोंने जाति-पाँतिके खिलाफ आवाज उठानी आरम्भ कर दी है। बौद्ध धर्म भी जाति-पाँतिके खिलाफ है; इसलिए पंडे-पुजारियोंको धर्मकी दुहाई देनेका मौका नहीं है।

सामाजिक बुराइयाँ सिंहल लोगोंमें बहुत ही कम हैं। १८-१९ वर्ष लड़कीके ब्याहकी सबसे कम उम्र है। लड़के साधारणतया २९-३० वर्षकी उम्रमें ब्याह करते हैं। इस प्रकार बाल-विवाहका नाम नहीं। विधवा-विवाह और तिलाक इच्छापर निर्भर हैं। इनमें किसी प्रकारकी रुकावट नहीं। दहेज आदिकी भी प्रथा नहीं है। गाँवसे लेकर शहरतक सभी जगह आज कई

वर्षोंसे प्राइमरी शिक्षा लड़के-लड़कियोंके लिए मुफ्त और अनिवार्य है। अपढ़ लोग बहुत कम हैं। सारे लंकामें वेश्यावृत्ति कानूनसे मना है। शराबका बेचना भी स्थानीय लोगोंके ऊपर है। यदि किसी इलाकेके लोग शराब आदि नशाकी चीजोंकी बिक्री रोकना चाहें तो कहनेपर सभी वयस्क आदमियोंका वोट लिया जाता है और बहुमत होनेपर दूकान बन्द कर दी जाती है। सीलोनके बहुतसे भागोंमें मादक वस्तुओंका इस प्रकार बहिष्कार हो चुका है।

लंकाके लोग भारतकी अपेक्षा अधिक सुखी हैं। उनका मुख्य पेशा चाय, रबर और नारियलके बगीचे हैं। यद्यपि भूमि बहुत ही उर्वर तथा अधिक है, तो भी चावल यहाँ २-३ मास ही खाने-भरको पैदा होता है, बाकी हिन्दुस्तानसे आता है। रबर और चायके बगीचोंमें भी काम करनेवाले कुली भारतीय तामिल हैं। प्रतिवर्ष सत्तर हजारकी संख्यामें लंकामें बढ़ रहे हैं। इस असाधारण वृद्धिको ही देखकर सिंहल लोग भयभीत हो रहे हैं। और जब डॉनोमोर कमीशनने ५ वर्षसे अधिकके भारतसे आये लोगोंको भी वोट देनेके अधिकारकी सिफारिश की, तब उन्होंने जी तोड़कर इसका विरोध करना आरम्भ किया। उनका कहना है कि यदि भारतीयोंको वोटका अधिकार दिया गया तो अपनी वर्तमान वृद्धिकी गतिसे बीस-पच्चीस वर्षमें भारतीय (तामिल) ही बहुमतमें हो जायँगे और हम सिंहल अल्पमतमें। यद्यपि सिंहल लोगोंके भयका काफी कारण है, तो भी इसमें भी शक नहीं

है कि भारतीय कुलियोंके बिना अँगरेजोंके अरबों रुपये चाय, और रबरके जिन बागोंमें लगे हैं वे सूख जायँगे। ऐसी हालतमें अँगरेज कभी कुलियोंकी आमद रुकने न देंगे। सीलोनमें जङ्गली भूमि बहुत है। भूमिमें हाथ लगते ही तामिल कुली कुलीगीरी छोड़ स्वतन्त्र किसान बन जाता है; इसलिए प्रतिवर्ष कुलियोंकी माँग भी घटनेकी जगह बढ़ती ही जाती है। इसका परिणाम स्पष्ट है, अर्थात् कुछ वर्षोंमें भारतीयोंकी बहुसंख्या। सिंहल लोग भी बहुसंख्यासे नहीं घबराते; किन्तु वे चाहते हैं कि सिर्फ कुली भारतीय वहाँ रहें, उनके लिए वोटाधिकारमें ऐसे नियम होने चाहिए, जिनसे उनकी अधिकांश संख्या वोटाधिकारसे वंचित रहे, उदाहरणार्थ ५००), ६००) रुपया सालाना आमदनीवाले अच्छे शिक्षित और बहुत वर्षोंसे वहाँ रहनेवाले भारतीयको ही वोट देनेका अधिकार दिया जाय।

अँगरेज लोग भी उनकी बात मान लेते, यदि उन्हें विश्वास होता कि भारत अपने पुत्रोंको सदा चुपचाप लंकामें गुलामी करनेके लिए भेजता रहेगा। फल स्पष्ट है। या तो सिंहल लोग अँगरेजोंके चाय और रबरके बगीचोंके लिए पर्याप्त सिंहल मजदूर दें, नहीं तो २०, २५ वर्षमें अल्प संख्यामें होनेके लिए तैयार रहें। वर्तमान समयमें कुलियोंकी जो मजदूरी है उसपर सिंहल मजदूर मिलना ही असम्भव है। मजदूरी दूनी करनेके लिए वे सिंहल बाग-मालिक भी तैयार नहीं, जो व्याख्यान-मंचोंपर इस विषयकी लम्बी-लम्बी स्पीचें झाड़ा करते हैं।

तामिल हिन्दू-स्त्री

कुलीन द्रविड़ युवती

लंकाका सारा पश्चिमी समुद्र-तट नारियलके बगीचोंसे ढका है। नारियल बिना कोई देश जी भी सकता है, इसका यहाँके लोगोंके लिए अनुमान करना ही मुश्किल है। समुद्र-तलसे हजार डेढ़ हजार फीटकी ऊँचाईतक रबर होता है। रबरके बगीचे अधिकतर अँगरेजोंके हैं, तो भी लंकावालोंका उनमें काफी हिस्सा है। डेढ़ दो हजार फुटसे ऊपरके पहाड़ चायके बागोंसे ढँके हुए हैं। ये अधिकतर अँगरेजोंके ही हाथमें हैं। ठंडा होनेसे ये उनके रहनेके लिए भी बहुत ही अनुकूल हैं।

नुवर एलिया समुद्रतलसे ६,००० फुट ऊपर है, यही यहाँका शिमला है। बारहों महीने यहाँ बनारसके कार्तिक-अगहनकी-सी सर्दी पड़ती है। चारों ओर पहाड़ोंसे घिरी यह चौरस उपत्यका सीलोनकी अत्यन्त रमणीय भूमि है। इसीके करीब सीता-एलिया है, जहाँ कहा जाता है—रावणने सीताको कैद करके रक्खा था। लोग इसके प्रमाणमें आस-पासके जंगली लाल अशोकके पेड़ोंको भी दिखाते हैं, तथा लगे हुए उस पर्वतको भी दिखलाते हैं, जिसके ऊपरकी एक हाथ गहरी मिट्टी कोयलेकी भाँति काली है।

नुवर एलियाके ही पास लंकाका सबसे ऊँचा पर्वत-शिखर पेड्रूतला गल्ल (८,२९६ फुट) है। यह ७३५३ फुट ऊँचा है, अधिक पूज्य समझा जाता है। कहते हैं, भगवान बुद्ध एक बार जब लंका आये थे, तब उन्होंने अपना पद-चिह्न इस पर्वत-शिखरपर अङ्कित किया था। फरवरीमें बहुतसे यात्री श्रीपादकी यात्रा करते

हैं। बाबा आदमसे सम्बन्ध रखनेके कारण मुसलमान भी इस स्थानकी पवित्रताको स्वीकार करते हैं।

लंकाका रत्नपुरा-प्रदेश रत्नोंके लिए बहुत पुराने समयसे प्रसिद्ध है। उत्तरी समुद्रमें मोती निकालनेका व्यवसाय भी होता है। जंगली हाथी भी जब-तब पकड़े जाते हैं; किन्तु इन व्यवसायोंसे आय बहुत थोड़ी होती है।

सीलोनमें अधिक संख्या सिंहल लोगोंकी है, जिनमें दो ढाई लाखको छोड़कर बाकी सभी बौद्ध हैं। यहाँ बौद्ध और बौद्ध-संस्थाओंके बारेमें कुछ लिखनेसे पहले यह लिखना आवश्यक है कि पोर्तुगीजोंके समयमें बौद्धधर्मपर कैसा सङ्कट आया था। उन्होंने भी मुसलमानोंकी भाँति तलवारके जोरसे ईसाई-धर्मका प्रचार करना चाहा। मन्दिरोंको तोड़ा और जलाया, पुस्तकोंका नाश किया और हाथ लगे भिक्षुओंको कत्ल किया। इसीका परिणाम है कि पोर्तुगीजकालसे (१५९४-१६३६ ई०) पूर्वके कोई भी मंदिर, मूर्तियाँ या किताबें लंकामें नहीं मिलतीं। यद्यपि इस समय भी सीलोनका मध्य-भाग पहाड़ोंमें स्वतन्त्र था, तो भी कितनी ही बार पोर्तुगीजोंने वहाँ भी आग लगाई थी। इस राज-नैतिक अशान्तिके समय भिक्षुओंका नियम चलना असम्भव था। और परिणाम यह हुआ कि सत्रहवीं सदीके अन्ततकमें एक भी भिक्षु लंकामें न रह गया, जिसपर तत्कालीन राजा कीर्ति श्री राजसिंहने दूत भेजकर स्यामसे भिक्षु मँगवाये और लङ्कामें

नये सिरेसे भिक्षु-संघकी प्रतिष्ठा कराई। उसी वक्त बौद्ध त्रिपिटक भी स्यामसे मँगाया गया।

१७५३ ईस्वीमें भिक्षु-संघकी पुनः स्थापना हुई। इसके बाद ७०-८० वर्ष पूर्व बर्माकी तत्कालीन राजधानी अमरपुरसे कुछ सिंहल लोगोंने भिक्षु-आश्रम ग्रहण कर अमरपुर निकायकी स्थापना की। उसके पीछे बर्मासे ही एक और निकाय रामण्य-निकायकी स्थापना हुई। इस प्रकार आजकल लंकाके बौद्ध साधु तीन निकायोंमें विभक्त हैं। स्याम-निकायके भिक्षु ही अधिक हैं और पुराने स्थान भी इन्हींके अधिकारमें हैं। इनका एक और भी नियम है कि ये सिर्फ गोवी जातिके लोगोंको ही भिक्षु बनाते हैं। इनके बाद अमरपुर निकाय है। रामण्य-निकायमें छः-सात सौ ही भिक्षु हैं। अमरपुरकी तरह यद्यपि इनमें भी जाति-भेदका खयाल नहीं है, तो भी तीनों निकायोंमें यही विनयके नियमोंके पालनमें कड़ाईसे काम लेते हैं।

पिछले पचास वर्षोंमें बौद्ध-भिक्षुओंने बौद्ध-धर्मके अध्ययन और प्रचारमें काफी भाग लिया है। इसके लिये आचार्य सुमंगलने कोलम्बोमें विद्योदय-विद्यालय तथा उनके गुरु-भाई आचार्य धर्मालोकने कोलम्बो नगरके बाहर विद्यालंकार-विद्यालय (पेलि-यागोडा) स्थापित किया। लंकाकी इन दो संस्थाओंने पाली और बौद्धधर्मके अध्ययनकेलिए बहुत काम किया है और कर रही है। इनके अतिरिक्त और भी कितने विद्यालय हैं, जिनमें भिक्षुओंके

पढ़ने का प्रबन्ध है। दोडन्द्रुवमें आचार्य श्री ज्ञानातिलोक महास्थ-विर तथा दूसरे कितने जर्मन बौद्ध-भिक्षु हैं। महास्थविर ज्ञाना-तिलोकने बहुत-सी पाली पुस्तकोंका जर्मन भाषामें अनुवाद किया है। पाली भाषापर उनका पूरा अधिकार है। बौद्ध धर्म और दर्शनके प्रति उनकी श्रद्धा अगाध है।

---

[६]

लंकामें हिन्दू

१९२१ की जन-संख्याके अनुसार ९८२०७३ हैं। यहाँ मैंने संक्षेपके लिए हिन्दू शब्दके अर्थको संकुचित करके, उसी अर्थमें प्रयुक्त किया है, जिसमें कि सरकारी कागजोंमें इसका प्रयोग होता है। इन हिन्दुओंमें सभी वही तामिल (द्राविड़) हैं, जो या तो उनकी सन्तान हैं, जो सहस्रों वर्षोंसे यहाँ आकर बसते गये हैं अथवा वह श्रमजीवियोंकी भारी तादाद है, जो चायके बगीचोंमें कुलियोंका काम करते हैं। उक्त जन-गणनाके अनुसार कुल द्राविड़ ११२००६९ हैं। सभी पहिले हिन्दू थे; किन्तु अब इनमेंसे सवा लाख ईसाई हो चुके हैं। यहाँके हिन्दू समुद्र पार होकर भी वैसे-ही कट्टर हैं, जैसे कि मद्रास प्रान्तमें। छूत-छातका घृणित तथा अमानुषिक व्यवहार, विशेषतः उत्तारी प्रान्त जाफनामें असह्य है। उपरोक्त हिन्दुओंकी अधिक संख्या प्रायः दो ही प्रान्तोंमें बास करती है; यह प्रान्त हैं,

उत्तरीय तथा पूर्वीय प्रान्त। उत्तरमें अनुराधपुरसे ही तामिल बस्ती अधिक होने लगती है। पूर्वमें वट्टीकोलाके दक्षिणसे त्रिकोमाली तथा उत्तरतक फैला हुआ प्रान्त पूर्व प्रान्त है, जिसका शासन-केन्द्र वट्टीकोला समुद्र-तटपर बसा है। इस प्रान्तमें भी तामिलोंकी ही बस्ती अधिक है; किन्तु कितने ही भागोंमें मलाई तथा मद्रासससे आकर बसे हुए मुसलमानोंकी संख्या पर्याप्त है। पूर्वीय प्रान्तोंमें हिन्दू सिर्फ खेतीका काम करते हैं। कपड़ा तथा दूसरे प्रकारका भी प्रायः सबका सब काम मुसलमानोंके हाथमें है। इन प्रान्तोंमें सिंहाली भाषा इतनी कठिनाईसे समझी जाती है, जैसे वह लङ्काकी भाषा ही नहीं है।

तामिल बड़े ही परिश्रमी हैं। लङ्काकी चाय और रबर उन्हींके परिश्रमका फल है। जिन प्रान्तोंमें अधिकांश तामिल रहते हैं, वह सभी शुष्क प्रान्त हैं। इनमें वर्षा बहुत कम होती है। हजारों वर्षोंसे लङ्काके राजा बड़े-बड़े तालाबोंको बनाकर बूँद-बूँद जल एकत्रित करनेका प्रबन्ध करते आये हैं। किसी समय जब यह जलाशय सुरक्षित थे तो मनुष्य दैवकी कृपणताका भी अपने पौरुषसे प्रतीकार करता था। बहुत दिनोंसे मरम्मत आदिका इन्तिजाम न होनेके कारण यह जलाशय बहुतसे नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं। अँगरेज सरकारने इधर इनमेंसे बहुतोंकी मरम्मत कराई है, जिससे भविष्यमें बहुत कुछ कृषिकी उन्नति होनेकी आशा है। इनमें कितने ही जलाशय छोटे-छोटे समुद्र जैसे १५, २० मीलके घेरेमें फैले हुये हैं।

यद्यपि यहाँके हिन्दुओंमें ब्राह्मणोंकी संख्या बहुत कम है तो भी दूसरे अब्राह्मण हिन्दू अछूतोंके साथ वैसाही कठोरताका बर्ताव करते हैं, जैसे कि कोई मालाबारके नम्बूदरीपाद। फल इसका यह हो रहा है कि निम्न जातिके अछूत हिन्दू ईसाई होते जा रहे हैं। तीन-चार लाखकी संख्यामें जो कुली मद्रासमे यहाँ आते-जाते रहते हैं, उनकी भी देख-भाल करनेवाला कोई नहीं है। आज पश्चिमी समुद्र-तटपर भी देहातोंमें अनेक गिर्जे तामिलोंके लिए बने हुये मिलते हैं। पिछली अर्धशताब्दीसे उद्योगने बौद्धोंको बहुत कुछ जागृत कर दिया है। यही वजह है, जो पिछले दश वर्षोंमें बौद्ध ११·९ फी सदी बढ़े हैं, जब कि ईसाई ८·४ मुसल्मान, ६·७ और हिन्दू ४·७ बढ़े हैं।

इधर हिन्दुओंमें जहाँ-तहाँ रामकृष्ण मिशनकी ओरसे भी काम हो रहा है। लेकिन वह उतना नहीं है, जितनेकी आवश्यकता है। सब से बड़ी बात यह है कि यहाँ आवश्यकता है कितनी ही सामाजिक कुरीतियोंमें क्रान्ति पैदा करने की; किन्तु अधिकांश रामकृष्ण मिशनवाले क्रान्तिसे भयभीत होते हैं। यही वजह है कि वह जनताके उन सुधारोंके स्वीकार करलेनेपर अपना कदम उधर बढ़ाते हैं। वस्तुतः लंकाके हिन्दुओंको आर्य-समाज जैसी संस्थाकी आवश्यकता है, जो यहाँके जाति-पाँति छुआ-छूतके बन्धनोंको तीखे नश्तरोंसे फोड़ निकाले, न कि जहरीले फोड़ेपर साधारण मरहम लगावे। त्रिंकोमालीमें सुननेमें आया, कितने ही वर्ष पूर्व वहाँ कुछ आर्य-समाजी थे; किन्तु शायद अब कोई नहीं है।

त्रिंकोमालीकी (त्रिकोणामलय) जन-संख्या ९ हजार है, जिसमें ५ हजार हिन्दू, बाकी ४ हजारमें ईसाई, मुसलमान और सिंहाली बौद्ध हैं। जहाँ दो हजारकी संख्या होनेपर भी रोमन कैथलिक ईसाइयोंके स्कूल और लड़कियोंके लिग कान्वेंट हैं। वहाँ हिन्दुओंने बहुत पीछेसे इन संस्थाओंको खोला है, तो भी कार्य मङ्गलप्रद है और रामकृष्ण मिशन इसके लिए धन्यवादका पात्र है। त्रिंकोमालीके हिन्दुओंमें कितने ही क्लर्कीका काम लङ्कामें ही नहीं बाहर मलाया स्टेटतक जाकर करते हैं। इस प्रदेशके हिन्दू (जहाँ हिन्दू बहुत अधिक संख्यामें हैं) व्यापारमें जितने पिछड़े हुए हैं, उतने शायद ही कहींके हों। यह लोग सिर्फ कुलीगिरी, खेती और क्लर्की जानते हैं। हिन्दी जाननेवालोंका तो यहाँ पता भी नहीं है।

संक्षेपसे कह देना चाहता हूँ कि, मारवाड़ी वैश्योंके लिए इस तामिल-लंकामें बहुत क्षेत्र पड़ा हुआ है। यद्यपि यहाँका कपड़ा, गल्ला आदिका व्यवसाय मुसलमानोंके हाथमें है; किन्तु वह मारवाड़ियोंकी व्यापारिक बुद्धि, सङ्गठन और पूँजीका सामना नहीं कर सकते। सिंहालियों जैसे सुस्त क्लर्कोंकी जातिको अथवा देशकालानुसार प्रतिभा-विरहित तामिल जातिको ही वह पछाड़ सकते हैं। जहाँ काबुली पठान त्रिंकोमाली, कोलम्बो तक धावा मारते हैं, वहाँ सारे लङ्काका मारवाड़ी-शून्य होना अच्छा नहीं मालूम होता

लङ्काके हिन्दुओंका सर्वोत्तम तीर्थ स्कन्दस्वामीका मन्दिर

सिंहल माता
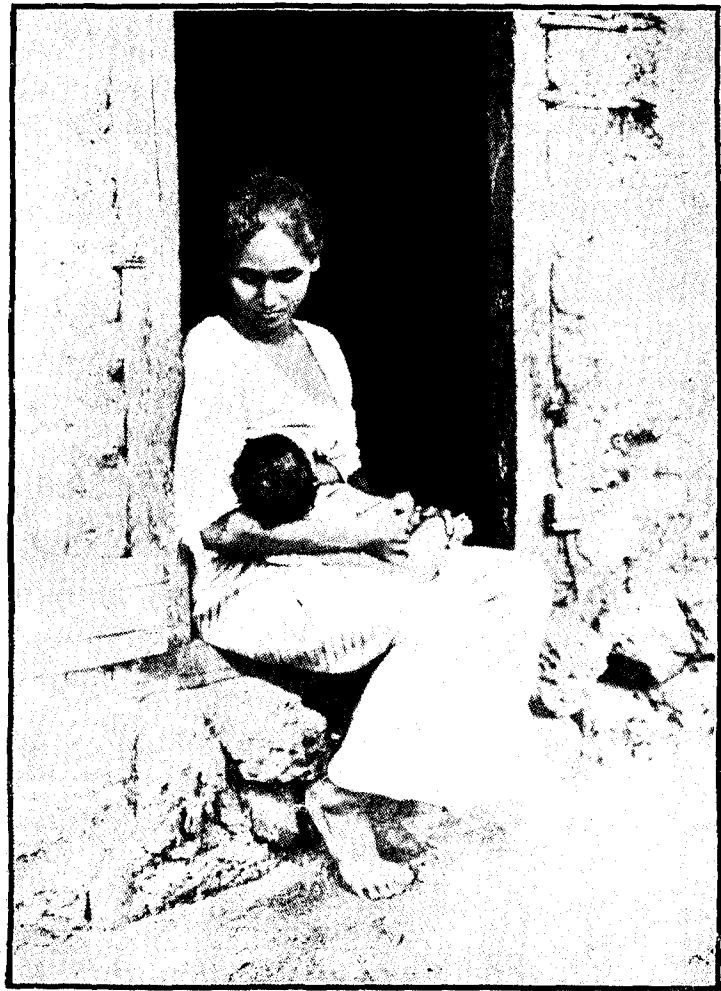
महावेली गंगामें हाथियोंका स्नान
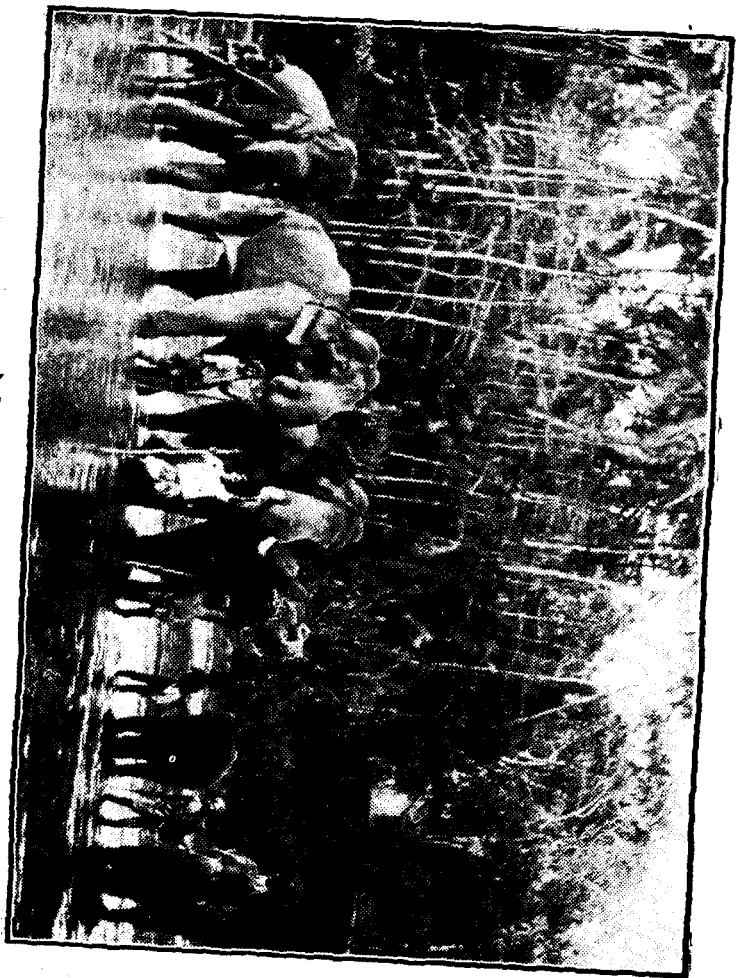
दक्षिण लङ्काके खदिर गांवमें है। हर साल यहाँ श्रावण पूर्णिमाको मेला लगता है। कुछ साधु भी हैं, किन्तु वह अधिकांश भारतीय साधुओंकी भाँति जातिपर बोझ-मात्र हैं। कहा नहीं जाता, लङ्काके हिन्दुओंका भविष्य कैसा है। अभीतक यहाँके हिन्दू चेतनाशून्यसे जा रहे हैं। किसी प्रकारके धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक सुधारकी भावना भी अभी इनमें पैदा नहीं हुई है।

---

[७]

समन्तकूट (Adam's Peak)

समन्तकूट या श्रीपाद, जिसे अँगरेजीमें 'ऐडम्स-पीक' भी कहा जाता है, लंका (सीलोन) का सबसे पवित्र पर्वत-शिखर है। यह यहाँके तीन सर्वोच्च शिखरों—पिदुरु तला-गल (८२९६ फीट), किरि-गल-पोत (७८५७ फीट) और ऐडम्स-पीक (७३६० फीट)—में तीसरे नम्बरपर है। अधिक ऊँचा होनेपर भी उन दो शिखरोंके साथ वह पवित्रताका भाव नहीं पाया जाता, जो 'समन्तकूट' के साथ है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह चोटी बौद्धों और ब्राह्मण-धर्मियोंकी दृष्टिमें जितनी पवित्र है, उतनी ही मुसलमानोंकी दृष्टिमें भी! पिछली २४-२५ मार्च (१९३२) को मुझे यहाँकी सर्व-प्रथम यात्रा करनी पड़ी। 'जागरण'के पाठकोंके सम्मुख आज मैं उसी यात्रा-वृत्तान्तको लेकर उपस्थित होता हूँ।

भदन्त आनन्द कौसल्यायन चार वर्षसे यहाँ आये थे। वह अब जल्दी ही स्याम और हिन्दू-चीन (Indo-china) की

ओर जा रहे हैं, और इसीलिये—फिर कभी मौका मिले या न मिले, ऐसा खयाल कर—उनकी इच्छा समन्तकूट हो आनेकी हुई। इतने दिनोंसे यहाँ (सीलोन में) रहते हुए भी मैं कभी जा नहीं सका था; और यद्यपि अभी मुझे कुछ महीनों और यहाँ रहना है, तो भी यह सोचकर कि समन्तकूटकी यात्रा मार्च और अप्रैलमें ही सुकर होती है, अन्य मासोंमें वर्षा और तेज हवाके कारण यात्रा कठिन हो जाती है, मेरा भी इरादा जानेका हो गया। हमारे साथ श्री एम० एच० परेरा पहलेसे ही जानेको तैयार थे। दिन पक्का होनेके दिन, श्री वाङ्ने भी—एक चीनी विद्वान, जो आजकल हमारे (विद्यालंकार) कालेजमें ही पढ़ रहे हैं, जानेके लिये उत्साह प्रकट किया। इस प्रकार चार आदमियोंकी मंडली हो गई। स्टेशनतक एक और सज्जन मिल गये। अब हम पाँच हो गये।

कोलम्बोंसे समन्तकूट जानेके दो रास्ते हैं—एक 'रत्नपुरा' होकर और दूसरा 'हैटन्' होकर। रत्नपुराके रास्तेमें यद्यपि खर्च कम पड़ता है, तो भी पैदल अधिक चलना पड़ता है; इसीलिये पैसेवाले क्या, अधिकांश लोग, हैटन्के रास्ते ही जाते हैं। हमारी डाक-गाड़ी ९ बजे रातको जानेवाली थी। २३ मार्चको हम लोग मर्दाना (कोलम्बो) गाड़ीपर जब पहुँचे, तो देखा, वहाँ जगह ही नहीं है! आनन्दजी, मेरा और श्री परेराका टिकट सेकण्ड क्लास-का था और इस्टरकी छुट्टियोंके कारण ६,८५ रुपयेमें आने-जाने-का मिला था। गाड़ीमें चढ़कर भी हम उतर आये। कुछ ही

मिनटोंमें दूसरी स्पेशल ट्रेन आई। उसमें किसी प्रकार हम दोनों भिक्षुकोंके लिए एक बेंच खाली कर दी गई।

दस बज चुके थे, जब हमारी गाड़ी रवाना हुई। हमारे डब्बे-के सभी आदमी बीचमें कहीं उतरनेवाले न थे, अतः यह आशा न थी कि कहीं सोनेका मौका मिलेगा; इसलिये बैठे-बैठे रात बिता देनेको तैयार हो गये।

भारतकी डाकको लेकर आनेवाली गाड़ीके पहले और दूसरे दरजोंमें निचली सीटोंके ऊपर भी एक-एक सीट रहती है, जिससे यात्रीके सोनेका कोई रास्ता निकल आता है; परन्तु मालूम हुआ कि इस लाईनमें वह बात सिर्फ प्रथम श्रेणीमें ही है।

पहले हमारा ध्यान एक कृष्णकाय अधेड़ मेम साहेबकी ओर गया, जब हमने उन्हें फर-फर अँगरेजी झाड़ते देखा। जब उनके साथका छोटा बच्चा रोने-चिल्लाने लगा, और उसे भी उन्होंने अँगरेजीमें चुप कराना शुरू किया, तो हमें मालूम हो गया कि इनका यह स्वांग बनावटी नहीं है। सीलोनमें वस्तुतः ऐसे कितने ही परिवार हैं, जिनके यहाँ अँगरेजी मातृभाषाके तौरपर है। कितने ही ऐसे सिंहल परिवार यद्यपि बोलचालकी सिंहल-भाषा बोल तो लेते हैं; किन्तु लिखना-पढ़ना नहीं जानते। हम लोगोंने यह भी देखा कि मेम साहेबकी दो लड़कियाँ जहाँ कौवेसे भी गोरी थीं, वहाँ सबसे छोटा बच्चा गोरे रंग और सुनहले बालोंवाला था! लेकिन इसका समाधान हो गया, जब मालूम हुआ कि रोमन-कैथलिक ईसाइयोंमें, अपने पापोंको क्षमा करानेके लिये, स्त्री-

पुरुषोंको अनिवार्य रूपसे अपने पादरियोंके पास जाना होता है!
इन पादरियों या फादर लोगोंमें बहुतेरे योरोपियन हैं और अविवाहित होते हैं। मालूम होता है, काले रंग और पापका एक ही रंग है। इसीलिये जब कभी पापकी गहरी क्षमा हाथ लग जाती है, उस समय यह चमत्कार देखने में आता है कि यद्यपि उसी व्यक्तिमें तो नहीं; किंतु स्त्री होनेपर उसकी सन्तानमें, कालिमारहित श्वेत-वर्ण सन्तानके रूपमें, वह प्रादुर्भूत होती है।

रातको कुछ देरतक तो अखबार और पुस्तकमें गुजारा। इसके बाद आनन्दजी तो कोनेमें होनेसे बैठे-बैठे झपकी लेने लगे। हम दोनों ऐसे ही समय बिताने लगे। यह जानकर सन्तोष हुआ कि कुछ स्टेशनोंतक खड़े रहनेके बाद, श्रीवाङ् और दूसरे सज्जनको बैठनेकी जगह मिल गई है। प्रायः ५२ मीलतक तो हमारी गाड़ी मैदानमें गई; किन्तु 'रम्बुक्कन' से पहाड़ शुरू हुआ, और वहाँ से ५६ मील हैटनतक पहाड़ ही पहाड़ था। जाते वक्त रातमें जानेसे यद्यपि हम बाहरके दृश्यको देख न सके थे; किन्तु लौटते वक्त उसे अच्छी तरह देखा। पहले निचले पहाड़ोंपर नारियल और रबड़के वृक्ष बहुतसे दिखाई पड़ते थे। नारियलका भाव कुछ इधर सुधर गया है, इसलिये उनके बगीचोंमें साफ-सुथरापन दिखलाई पड़ता था, किन्तु रबड़की कुछ न पूछिये, कितने ही बगीचे बरसोंसे नहीं पाछे गये हैं। कोई-कोई बगीचेवाले भविष्यकी आशापर कभी-कभी सुध तो लेते हैं, जिसके प्रमाण-स्वरूप वृक्षकी जड़के पास लटकती हुई नारियलकी

खोपड़ीमें पाछे हुए हिस्सेसे दूधकी पतली धार गिरती दिखाई पड़ रही थी। एक पहाड़को तो नीचेसे ऊपरतक केलेके बगीचेसे ही ढँका देखा। किन्तु ऊँचाईके साथ नारियल और रबड़के बाग कम होते जाते थे। डेढ़ हजार फीटसे ऊपर चायके बगीचे शुरू हो गये।

लंकाका बिचला भाग पहाड़ी है, जिसे पुराने ग्रन्थोंमें 'मलय' कहा गया है। आजकल इस प्रदेशके बहुतसे भागोंमें चायके बगीचे हैं, जिनके अधिकांश मालिक साहब लोग हैं और कुली सब-के-सब तामिल भारतीय। इन कुलियोंकी संख्या सात लाखसे ऊपर है। यह इन्हींकी मिहनतकी बरकत है कि सैकड़ों मील ये पहाड़, पैरसे चोटीतक, पाँतीसे लगी बेलाकी फुलवारी-जैसे, चायके बागोंमें परिणत हो गये हैं।

सवेरे छः बजेके करीब हमारी गाड़ी हैटन् पहुँची। पहले हमें यहाँके एक सज्जनका तार मिल चुका था। किन्तु हम नियत गाड़ीसे न आ सके थे; इसलिये वह स्टेशनपर न मिल सके। 'हैटन्' पहाड़पर समुद्रतलसे ४१४१ फीटकी ऊँचाईपर, बसा हुआ है। इसीलिये यहाँ गर्मी नहीं है; बल्कि यहाँवाले तो इसे बहुत ही सर्द स्थानोंमें मानते हैं। लेकिन यह सर्दी हमारे बनारसकी दीवालीकी सर्दीसे कम ही है।

सिंहलमें भिक्षु, जहाँतक हो सकता है, मठोंमें टिकाये जाते । हमलोग भी एक मठमें लिवा ले जाये गये। मालूम हुआ, अभी स्थान-पति भिक्षु सो रहे हैं। हमलोग जबतक शौच आदिसे

निवृत्त हुए, तबतक भिक्षु भी जाग उठे। उन्होंने कहा, सर्द जगहमें निद्रा देरतक रहती है। मैंने कहा, बिल्कुल ठीक, योरपमें तो नव-दस बजेतक सोना मामूली बात है। बेचारे पहले समझते थे, हम दोनों आगन्तुक भिक्षु सिंहलके हैं, किंतु उन्हें और भी अधिक प्रसन्नता हुई, जब उन्हें मालूम हुआ कि हम भारतीय हैं।

मठके निचले भागमें एक स्कूल है, जिसमें दो सौसे ऊपर लड़के पढ़ते हैं। तामिल और सिंहलके साथ स्कूललीविङ् तककी पढ़ाई होती है। आसपास सभी चायके बगीचे हैं, जिनमें तामिल कुली काम करते हैं और बाजारमें भी बहुत-सी दूकानें तामिलोंकी हैं। कुलियोंकी भला इतनी कहाँ सामर्थ्य जो वे अपने लड़कोंको यहाँ पढ़नेके लिये भेज सकें; किन्तु तामिल व्यापारियों और क्लर्कोंके बहुतसे लड़के इस स्कूलमें पढ़ते हैं। इस भारतीय सम्बन्धका एक स्पष्ट प्रभाव मैंने यहाँ देखा कि हमारे ऊपरकी बैठकमें महात्मा गांधी और देशबन्धु दासकी तसवीरें लटक रही थीं।

भिक्षुको आश्चर्य हुआ, जब उन्हें मालूम हुआ कि प्रायः पाँच वर्षसे सिंहलका सम्बन्ध होनेपर भी मैं सिंहल-भाषा बोल या समझ नहीं सकता। उन्होंने कुछ दिनों पहले सिंहली दैनिक "दिन-मिन" में छपे मेरे लेखके बारेमें पूछा। मैंने कह दिया—मैं संस्कृतमें बोलता जाता था, जिसे दूसरे भिक्षुने सिंहलमें उल्था किया था। पीछे आनन्दजीसे उनकी सिंहलमें घुटने लगी और मैं आस-पासका दृश्य देखने लगा। सामने हमारे ऐडम्स-पीक-होटल था और नीचेकी ओर दो-तीन पतली कतारोंमें बसा

बाजार। पहाड़ोंमें जहाँ-तहाँ चायकी कोठियाँ तथा टीनसे छाई नाटी-नाटी पतली कुली-लाइनें थीं। सिंहलकी विशेषता—नारियल—का कहीं पता न था। इस ठंडकमें उसका फूलना-फलना दर-असल हो ही नहीं सकता था।

अब हमारा जलपान तैयार था। पाव रोटी, मक्खन, पानीमें उबाली चावलकी नमकीन सेवइयाँ, बीचमें नारियलके बुरादे-भरे चावलके चीले, तालका गुड़—यही नाश्ता था। पानी तो दर-असल अमृत था। रातको जगे ही थे, इसलिये निद्रादेवीका बड़ा तकाजा था। खाते ही हमें सोनेका कमरा बतला दिया गया और आठसे साढ़े दस बजेतक हम सोते रहे। श्रीवाङ् भी जगे थे, किन्तु उन्होंने अपना अधिक समय प्रकृति-निरीक्षणमें लगाया।

दोपहरका भोजन हमें उक्त सद्गृहस्थके घर ग्रहण करना था, इसलिये हम वहाँ पहुँचे। वहाँ मालूम हुआ, यद्यपि यह प्रदेश 'उड-रट्' (उद्-राष्ट्र=ऊपरी देश) है, तो भी यहाँके सिंहली व्यापारी अधिकतर नीचेके हैं। उनको मालूम हो गया था कि आनन्दजी मांस-मछली नहीं खाते। उनको यह भी समझा दिया गया था कि वह 'उम्मल्-कड्' भी नहीं खाते, जिसपर उन्हें आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है। जैसे कोई भारतीय वैष्णव किसी मिठाईको यह कहकर छोड़ दे कि उसमें कस्तूरी पड़ी है! कस्तूरीकी भाँति इस विशेष प्रकारकी सूखी मछलीको भी लोग मसालाकी भाँति व्यवहार करते हैं और सभी भाजी-तरकारियों-में डालते हैं। आज आनन्दजीके कारण जब 'उम्मल्-कड्' भी

नहीं पड़ने पाई, तो मछली-मांस कहाँसे ? अन्तमें जौके साथ घुन भी पीसा गया और मुझे भी उसीपर सन्तोष करना पड़ा। मुझे तो नारियलके बुरादेके दूधमें बनी मिर्चसे भरी यहाँकी भाजी-तरकारियाँ अच्छी लगती ही नहीं, वैसे तो मछली-मांसमें भी वही बात है, तो भी कुछ कामचलाऊ हो जाती है।

एक बजे हमें 'मस्केलिया'के लिये लारी मिली। भिक्षु होनेसे हम दोनोंके लिए ड्राइवरकी बगलमें अगली सीट मिली। सीलोन-की सड़कें आम तौरसे बहुत ही अच्छी हैं। यहाँ भी यह पक्की नहीं बल्कि 'टार'की बनी हुई थी। लेकिन, हर बीस कदमपर घुमाव था, जो यद्यपि हम दोनोंको उतना कष्टप्रद तो नहीं मालूम हुआ; किन्तु श्रीवाङ् तो उससे बहुत उकता ही नहीं गये, बल्कि हर दूसरे मिनट उनको लारीके खड्डमें चले जानेका डर लगा रहता था। दस-बारह मीलकी यात्रा करके उन्होंने तो फतवा दे डाला कि ड्राइवरका मन फौलादका था और यह भी जाहिर किया कि अब हम लारी द्वारा नहीं लौटेंगे। श्रीपरेराके भी हाँमें हाँ मिलानेसे उत्साहित हो, उन्होंने मुझसे भी पूछा। मैंने कहा—भाई, लारी मिल जानेपर पैदल चलना मेरे लिये असम्भव है। रही उसके खड्डमें जानेकी बात, सो तो मैं चलते वक्त ही अपने नायक स्वामी-को जवाब दे चुका हूँ—(जब उन्होंने कहा कि एक लारी दो ही चार दिन पूर्व खड्ड में गिर गई, और लोगोंने जानसे हाथ धोया)। लारियाँ हजारमें एक बार गिरा करती हैं, और अब तो वह बारी भी पूरी हो चुकी है, अब तो और डर नहीं।

'मडम्' से थोड़ा ही आगे चलनेपर चढ़ाई शुरू हो गई। इस चढ़ाईमें चक्कर खाता हुआ रास्ता न बनाकर सीढ़ियाँ बना दी गई हैं, जिससे चढ़ाई और कठिन हो गई है। थोड़ी ही देरमें पैर भर गये, और गति मन्द ही नहीं हुई,बल्कि हर पचास कदमपर सुस्ताने की जरूरत पड़ने लगी। श्रीवाङ् महाशय तो सबसे पीछे रहने लगे। मैंने कहा—वाङ् महाशय जेनरल चुने जायँ। लोगोंने उनके आगे न रह पीछे रह जानेकी आपत्ति उठाई। मैंने कहा, आज-कलके युद्धोंमें जेनरल आगे नहीं, पीछे रहा करता है। आखिर सबको स्वीकार करना पड़ा।

थोड़ी ही देरमें मुझे भी सहायक जेनरल बनना पड़ा। अब वाङ् महाशयने दुनियाकी बेवकूफीपर व्याख्यान देना शुरू किया—“ यह सिरसे पैरतक सिर्फ बेवकूफी है। क्या फायदा इस तरह तकलीफ उठानेसे ? मुझे यह मालूम होता, तो मैं हरगिज न आता। अब क्या मैं विद्यालंकार छोड़कर ऐसी बेवकूफी फिर करूँगा ! ”

रात-भर बेचारे वाङ् महाशय जगते आये। लारीमें हरवक्त जान जानेका खतरा था ; और अब यह आफत ! फिर कैसे रोम-रोमसे दुआ निकल सकती है ! आज अगले पड़ावतक यद्यपि डेढ़ घंटेकी ही यात्रा थी, तथापि इसे तय करनेमें बड़ा लुत्फ रहा। अपने पाँवोंके भरनेसे भी अधिक वाङ् महाशयकी धारावाहिक टिप्पणियोंमें लुत्फ था !

जैसे-तैसे 'गेत्तम्-पान्' पहुँचे। दूकानवालेको चिट्ठी दी। उसने

एक पतली वेंच-जैसा चँचरा बतला दिया। हम दोनों जाकर वहाँ बैठ गये। देखा, अभी ही सारा मकान यात्रियोंसे भरा पड़ा है, तो भी लोग आते ही जा रहे हैं और "करुण करनवा" कहकर बैठनेका स्थान लेते ही जा रहे हैं। अब कुछ वर्षा भी होने लगी। वाङ् महाशयथके ही नहीं, भूखे भी बहुत थे। उन्होंने जा पेट-पूजा की। भिक्षुओंको तो दोपहरके बाद भोजन करना ही नहीं, इसलिए हम दोनों निश्चिन्त थे। पूछनेपर कह दिया, तिब्बती चाय थोड़ी-सी पीयेंगे। कुछ रात जानेपर हमारे कथनानुसार मक्खन और नमक डालकर चाय बनाई गई; किन्तु चायकी बोतलमें पहलेसे कुछ मीठी चाय मिली हुई थी, इसलिए एक-एक प्यालेसे अधिक हम पी नहीं सके—दूसरे यह भी डर था कि ज्यादा पीनेपर पेशाबके लिए उठना पड़ेगा। नौ बजेके करीब दूकानदारने अपने सोनेका स्थान हमें दे दिया और हम दोनोंको घरकी तरह सोनेका स्थान मिल गया। हमने समझा था कि हमारी पुरानी जगह साथियोंको मिल जानेसे उनको आराम होगा, किन्तु हमारी कोठरीमें उनके जाते ही लोगोंने स्थान दखल कर लिया। इस प्रकार इस रात भी उनके सोनेकी नौबत न आई, और वाङ् महाशयके ऊपर तो एकके बाद दूसरी आफत-सी आती मालूम हुई! चैत बदी तीज होनेसे चाँदनी रात थी; इसलिए एक बजते ही चल देनेकी बात तय कर हम सो गये।

यद्यपि सोनेके लिए हमें अच्छी जगह मिल गई थी, तो भी नींद बीच-बीचमें उचट जाती थी। लोग भी बारह बजे रातसे ही

चलने लगे थे। हम लोग भी एक बजे (२५ मार्च) से पहले चल पड़े। हमारे सामने चाँदनीमें स्तूपाकार 'समन्तकूट' दिखलाई पड़ रहा था। चाँदनी इतनी तेज थी कि वृक्षोंकी घनी छायामें ही हमें बिजलीकी मशाल (टार्च) की आवश्यकता पड़ती थी। रातको सोनेके लिये भी स्थान न मिलनेसे श्रीवाङ् और भी दुखित थे। मुश्किल यह थी कि हम इच्छा रखते हुए भी कुछ नहीं कर सकते थे। इसमें सन्देह नहीं, यदि वह भिक्षु होते, तो हम अपना स्थान उन्हें दे सकते थे। अस्तु ; जैसे-जैसे उनके पैर जवाब देते जाते थे, वैसे ही वैसे उनकी जबानकी कड़ी टिप्पणियाँ बढ़ती जा रही थीं। बेचारे वाङ् ही क्यों, एक सिंहल-यात्री भी कहता सुना गया—बुद्ध तो बड़े ज्ञानी होते हैं ; किन्तु मालूम होता है, उनसे भी बेवकूफी बिलकुल छूट नहीं गई रहती, अन्यथा किसी आसानीसे पहुँच जाने लायक स्थानको छोड़ इस दुर्गम शिखरपर क्यों अपना पद-चिन्ह स्थापित करने आये !

मेरे पैर भी भर आये थे, किन्तु इस समय मैं पीछे रहनेवाला न था। आखिर हिमालयके यात्रीकी लज्जा भी तो रखनी थी ! अन्तको हम उस जगह पहुँचे, जहाँसे "नारियलके वृक्षपर चढ़नेकी तरह" की चढ़ाई शुरू होती है। कई जगह सीढ़ियाँ पैर रखने भरकी ही हैं,लेकिन कठिन स्थानोंपर लोहेके सीकचे लगा दिये गये हैं। उस वक्त यह खयाल जरूर हुआ था कि इस वक्त रातको कुछ सीढ़ियोंसे अधिक देखा नहीं जा सकता और चढ़ना भी ऊपरकी ओर है ; दिनमें उतरते वक्त डर बहुत लगेगा। रास्तेमें एकाध

जगह सुस्ताते हुए दो बजेके कुछ देर बाद सर्वप्रथम मैं ही श्रीपाद पहुँचा। जैसा कि पीछे कहा गया है, यह शिखर नोक-रहित स्तूप की शकलका है। ऊपर प्रायः १५ हाथके घेरेमें एक चट्टान है, जिसके चारों ओर भूमि समतल करके तीन हाथ लम्बी चहारदीवारी खींच दी गई है। इस चहारदीवारीके भीतर एक हजार आदमी खड़े हो सकते हैं! उभड़ी शिला न गोल है न समतल। इसी शिलामें एक स्वाभाविक निशान पड़ा हुआ है। आस-पास उसके छः-सात अंगुल मोटा सीमेंट लगा दिया गया है, जिससे यह एक हाथसे कुछ अधिक लम्बा, गहरा, पद-चिन्ह-सा मालूम होता है। 'गया' का विष्णुपद भी इसी प्रकारका एक चिन्ह है। गयामें तो बल्कि मंदिरके बाहर शिलामें आधे दर्जनसे अधिक ऐसे चिन्ह हैं; लेकिन सबको विष्णुपद बननेका सौभाग्य कहाँ। श्रीपादकी बगलमें समन देवताकी प्रतिमा है। इसी देवताकी प्रार्थनापर, कहते हैं, बुद्धने अपने पद चिन्हको यहाँ छोड़ा।

पुजारी ने बतलाया, पहले-पहल राजा निःशंकमल्ल (११८७-११९६ ई०) रत्नपुराके रास्तेसे यहाँ आये थे। उस समयतक यह पद-चिन्ह और आस-पासका सारा शिखर रत्नमय था। लेकिन राजाने सोचा, भविष्यके लोग लालचमें पड़कर चोरी करके नरकगामी होंगे, इसीलिए १८ हाथ मोटी शिलासे उसे ढँक दिया और ऊपर नया पद-चिन्ह बना दिया। इस पद-चिन्हमें भी एक ओर छिद्र था, जिससे नीचेका भी असली श्रीपाद दिखलाई पड़ता था; किन्तु लोग चढ़ावेके पैसे उसमें डाल देते थे। पैसोंको

इस प्रकार बेकार जाते देख, यहाँके पहलेके महन्त श्रीसुमंगल महास्थविरने, सीमेंट करवा दिया। उन्हींसे यह भी मालूम हुआ कि अगहन-पूर्णिमाको पुजारी लोग यहाँ आते हैं और बैशाख पूर्णिमातक रहते हैं। यात्री भी इसी बीचमें आते हैं; किंतु अधिकांश लोग मार्च और अप्रैल मासमें ही आते हैं।

हम जिस वक्त ऊपर पहुँचे, सौ-डेढ़-सौ आदमी वहाँ मौजूद थे। पहले पादुकाके पास गये। देखा, कुछ स्त्री-पुरुषोंका मत्था पैरके गढ़हेमें टिकवाया जा रहा है। उस वक्त मुझे अपने बचपनकी एक घटना याद आई—

"उस समय जिन पंडितजीके यहाँ गाँवमें मैं लघुकौमुदी पढ़ता था, वहाँके एक विद्यार्थी बनारसमें विश्वनाथजीका दर्शन करने आये। बहुत दूर था नहीं, पैदल ही चले आये थे; किन्तु आठ-दस आने पैसे बेचारेके पास थे। बदकिस्मतीके मारे विश्वनाथसे वह कचौरी-गलीके रास्ते चौककी ओर चल पड़े। वहाँ रास्तेमें एक पंडा मिल गया और बोला, काशीकरवट बिना किये क्या विश्वनाथके दर्शन और मणिकर्णिकाके स्नानका कोई फल हो सकता है? विद्यार्थी यद्यपि देहाती और संस्कृतका था, तो भी धर्मकी बात समझनेमें पीछे रहनेवाला न था। वह पंडेके साथ काशी-करवटमें गया। पंडेने कुआँ दिखलाकर कहा, यह काशी-करवट है, यहाँ करवट लो। विद्यार्थी जब करवट लेकर लेट रहा; तो पंडाजीने कहा, ऐसे नहीं पहले चित लेटो और आँखों, नाक, मुँह और कानोंपर एक-एक चवन्नी रखो। बेचारेके पास सात

चवन्नियाँ न थीं। अन्तमें सात इकन्नियाँ रखी गईं; फिर करवट ली। इकन्नियाँ जमीनसे पंडाजीने उठा लीं और 'यात्रा सुफल हो' कहकर पीठ ठोक दी!

यहाँ भी उसी तरहका कुछ दृश्य था। एक बित्ता ऊँचे ढालुए चबूतरेसे पैरके गड़हेमें तीन-चार स्त्री-पुरुषोंने पैसे रख-रखकर सिर रक्खा था। पुजारी पाली भाषामें कुछ मंत्र बोल रहा था। कई मंत्र-वाक्यों या गाथाओंके समाप्त होनेपर बेचारे सिर ऊपर करने पाते थे।

दूसरी तरफ देखा, कुछ तामिल 'हरो हर' कहकर साष्टांग दंडवत् कर रहे हैं। तीसरी ओर कुछ लाल टोपीवाले और नंगे सिर मुसलमान बाबा आदमके नक्शे-क़दमपर बत्तियाँ जला रहे हैं। पैसेके युगमें पैसा चढ़ाना सभीके लिये लाजिम ही ठहरा!

यद्यपि अब हम दर्शन कर चुके थे, तथापि समन्तकूटपर चढ़कर लोग सूर्योदयके सौन्दर्यको देखना भी आवश्यक समझते हैं। सूर्योदय ६ बजकर पच्चीस मिनटपर होनेवाला था, इसलिये अभी हमें साढ़े तीन घंटे यहीं रहना था। प्रधान पुजारी या प्रबंधकको ट्रस्टीकी चिट्ठी दी गई, जो ऊपरी चहारदीवारीके भीतर बनी हुई एक छोटी-सी कोठरीमें रहता था। उसने भीतर हम दोनों भिक्षुओंके लिये आसन लगा दिया, और दूसरे साथियोंके लिये चटाईपर जगह दी। इस वक्त हमने बहुत-सी बातें पूछीं,

जिनका वर्णन ऊपर आ चुका है। सोते-जागते, अन्तमें सबेरा हुआ। श्री परेरा महाशयने सूर्योदय देखनेके लिये बाहर चलनेको कहा, देखा तो उधरका सारा आँगन खचाखच भरा हुआ है। हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध—तीनों ही मजहबके लोग डटे हुए हैं। सभी सूर्योदय देखनेके लिये उत्सुक हैं। धीरे-धीरे अंधेरेमेंसे एक पतली-सी लाली दिखाई पड़ी। लेकिन साथ ही पूर्वमें बादलके बिखरे छींटे कुछ बढ़ने लगे। यहाँसे पूर्वकी ओर 'किर-गल-पोत' शिखर पड़ता है, लेकिन अब उधर बादल था, इसलिये लोगोंकी नजर पूर्व-उत्तर तरफ 'पि-दु-रु-तल-गल' पर पड़ रही थी। एक पतली-सी सुनहली रेखाके धोखेमें लोग साढ़े छः बजेके बादतक उधर ही देखते रहे। अन्तमें पुजारीने बतलाया, सूर्य बहुत ऊपर चढ़ गये, आज बादलसे सूर्योदयका दृश्य नहीं दिखाई पड़ा। सब लोग हताश हुए।

अब हम लोग नीचे उतरने लगे। चढ़ते वक्त दिलको दिलासा देते आये थे कि उतराईमें मौज रहेगी, किंतु यहाँ तो मालूम होता था कि पैरके जोड़ ही खुल गये हैं। थोड़ी देर नीचेकी ओर आकर देखा, एक गुजराती मुसलमान सज्जन हाथ-पैरोंके बल मुश्किलसे चढ़ रहे हैं। मैंने एक गुजराती मुसलमानसे ही पूछा, भाई यहाँ क्या है? उन्होंने उत्तर दिया, दादाके उतरनेकी जगह है। सिंहली पुजारीने बतलाया था कि मुसलमान लोग यहाँ मुहम्मद साहबके उतरनेका स्थान मानते हैं, जिनका एक पैर यहाँ और दूसरा मक्कामें पड़ा था! हिन्दुओंके लिये बतलाया,

वे इसे शिवका पद-चिह्न मानते हैं और उनके विचारानुसार शिवजीका एक पैर यहाँ और दूसरा मक्कामें है! किसी जानकार हिन्दूसे तो नहीं पूछ सका; किन्तु मुसलमानोंके बारेमें मालूम हुआ कि मुहम्मद साहबका पैर नहीं, बल्कि बाबा आदमका पैर है!!

बौद्ध लोग इस शिखरको 'समन्तकूट' और पद-चिह्नको 'श्रीपाद' कहते हैं। वे कहते हैं कि शाक्य मुनि एक बार लंकाद्वीपमें आये थे, उसी समय उन्होंने यहाँ धर्मोपदेश किया और आनेवाली जनताके हितार्थ अपना पद-चिह्न छोड़ दिया। सारे पाली त्रिपिटक (बुद्ध वचन) में न ऐसे किसी आगमनका और न उपदेशका ही कोई जिक्र है, तो भी यहाँके लोग इसपर परम श्रद्धालु हैं। यही नहीं, बल्कि उनके कथनानुसार बुद्धने तीन पद-चिह्न छोड़े हैं—एक नर्मदा-नदीमें सच्चबद्धक पर्वतपर, दूसरा यहाँ और तीसरा यवनोंके नगर अर्थात् मक्कामें; जैसा कि इस गाथामें कहा गया है—

"यं नम्मदाय नदिया पुलिने च तीरे, यं सच्चबद्धगिरिके सुमनाचलग्गे।
यं तत्थ योनकपुरे मुनिनो च पादं, तं पादलांछनमहं सिरसा नमामि॥"

जिस प्रकार बदरीनारायण और पशुपतिकी यात्रामें लोग अनेक गीत गाते तथा जय-घोष करते चलते हैं, वैसे ही यहाँ भी। "हिम-वत्-वर्णनाव" इसी मतलबकी एक पद्य-पुस्तिका ही है। (यहाँके लोगोंके लिये इतनी सर्दी भी काफी है, इसीलिये इस प्रदेशका नाम ही 'हिमवत्' रख दिया गया है)। इन पद्योंमें एक आरंभिक पदको एक आदमी पहले कहता है। इसके बाद सभी साथी मिलकर दूसरे हिस्सेको बोलते हैं। उदाहरणार्थ—

समन देवियो (समन देवता)—पिहिट वेएड (प्रतिष्ठा हो)।
पाद-पद्म—अपि वँदिएड (हम वन्दना करते हैं)।
अपे बुदुन् (अपने बुद्ध को)—अपि वँदिएड।
वन्दना करके लौटते समयके कुछ पद्य ये हैं—
अपे बुदुन् अपि वेंद गन—गमट यएड यन वो।
(अपने बुद्धको अपने वंदना कर)—(ग्रामको जा रहे हैं)।
समन देविन्दु पिन अर-गेन—पिनट पिहिट वेन श्रो।
(समन देवताकी पुण्य प्रदान कर पुण्यको प्रतिष्ठित किया)।

रास्तेमें जलपान कर हम पौने दस बजे मोटरकी जगहपर आये। दोपहरकी गाड़ी छूट जानेका डर था। वाङ् महाशयको डर हुआ, कहीं रातकी गाड़ीमें आज भी जागते ही न जाना पड़े, इसलिये उन्होंने तो तुरंत चलनेका निश्चय कर लिया और लारीपर न चढ़नेकी प्रतिज्ञा भूलकर फिर लारीसे ही 'हैटन्'के लिये चल पड़े। हम लोग भोजन आदिसे निवृत्ति होकर चले तो भी देखा कि अभी गाड़ीमें कुछ देर है, और वाङ् महाशय वहाँ इन्तजार कर रहे हैं। उन्होंने सुनाया, आज भी एक लारी उलट गई। लेकिन और लोगोंने कहा, आज नहीं, कुछ दिन पूर्व। मालूम होता है, लारीके गिरनेके स्थानको दिखाते हुए किसीने कुछ अपनी भाषामें कहा होगा, और इन्होंने उसका आज ही गिरना समझ लिया! गाड़ीसे रवाना होकर, ४५ घंटेके बाद, हम फिर कोलम्बो पहुँच गये।